विश्व शांति एवं अहिंसा प्रशिक्षण

डॉ बच्छराज दूगड़
अध्यक्ष,
अहिंसा एव शाति-शोध विभाग
जैन विश्व भारती सस्थान, लाडनू।

आचार्य शांतिसागर छाणी ग्रंथमाला
बुढ़ाना (उत्तरप्रदेश)

□ प्रथम संस्करण · 1995

□ मूल्य . 30 रुपये

□ आर्थिक सौजन्य मॉंगीलाल कमलकुमार पाटोदी,
साडम (बोकारो) बिहार।

□ मुद्रक : शकुन प्रिंटर्स, नई दिल्ली - 2

प्रेरणा स्रोत

परम पूज्य उपाध्याय

श्री 108 ज्ञानसागर जी महाराज

श्री माँगीलाल कमलकुमार पाटोदी
साडम (बोकारो) बिहार

प्रस्तुति

मनुष्य की चिर-प्रतीक्षित आकाक्षा है—शाति, जो उसके अस्तित्व, विकास एव प्रगति के लिए भी आवश्यक है। "जिस तरह युद्ध मानव-मस्तिष्क मे जन्म लेते है शाति भी मानव मस्तिष्क से ही जन्म लेगी।" युनेस्को की उपर्युक्त घोषणा यह स्पष्ट करती है कि हिंसा के प्रति प्रतिबद्धता घनी मारकाट, आणविक सर्वनाश, मानवीय एव भौतिक ससाधनो का भारी अपव्यय, विषमतावादी अर्थव्यवस्था, मानवाधिकारो का उल्लघन, हिंसक प्रतिशोध, हिसा-प्रधान विज्ञान और प्रौद्योगिकी, विप्लव, गृह-युद्ध, युद्ध, उपनिवेशवादी परम्पराओ आदि को तो जन्म दे सकती है पर शाति को नहीं। "जिस जाति ने युद्ध का अविष्कार किया वहीं शाति का अविष्कार करने मे सक्षम है।" सेबाइल घोषणा-पत्र का यह अतिम वाक्य आत्मविश्लेषण को इगित करता हुआ यह कहता है—अब वह समय आ गया है जब हमे अहिसा सार्वभौम रूपान्तरण की हमारी युगो पुरानी कल्पना को साकार रूप देने के प्रयत्नो को और भी गति देनी होगी तथा इसका प्रारम्भ स्वय से करना होगा।

कलह, वर्ग-सघर्ष, उग्रवाद, शस्त्रीकरण, सत्ता और सपत्ति का असमान वितरण—ये सब हिसा के स्फुलिग होते हुए भी हिसा के कारणो के रूप मे इन्हे जिम्मेदार ठहराना सतही चितन होगा। मूल रूप से असीमित इच्छाए, क्रोध, भय घृणा क्रूरता, मिथ्याभिमान, सग्रहवृत्ति आदि मानवीय सवेग ही हिंसा के लिए उत्तरदायी है। अनेकातिक चितन, सापेक्ष दृष्टिकोण, सह-अस्तित्व, सहिष्णुता, जीवन के प्रति सम्मान, विसर्जन, साधन-शुद्धि—ये सब अहिंसा के स्फुलिग है। इनके प्रशिक्षण और प्रयोग से शाति की अखण्ड लौ प्रज्वलित की जा सकती है।

वर्तमान मे एक ओर अहिंसा एव विश्वशाति की केवल चर्चा हो रही है, दूसरी ओर हिंसा की चर्चा ही नहीं, प्रयोग और प्रशिक्षण भी चल रहा है। एक ओर मानवाधिकारो की बात की जा रही है, दूसरी ओर एक मानव को मारना तिनके को तोडने जैसा हो गया है। एक ओर विकास शिखर को छू रहा है, दूसरी ओर आणविक विनाश की काली छाया मडरा रही है। एक ओर आधुनिकतम तकनीके विकसित हो रही हैं, दूसरी ओर पर्यावरण प्रदूषण बढ रहा है। एक ओर भौतिक सुख-सुविधाए बढ रही हैं, दूसरी ओर ओजोन की छतरी का छेद चौडा होता जा रहा है। ये कुछ ऐसे विरोधाभास हैं, जो

अहिंसा के लिए चुनौती बने हुए हैं, मानव और विश्वशाति के लिए खतरा बने हुए हैं।

प्रस्तुत कृति मे न केवल इन समस्याओ का स्पर्श है अपितु इन समस्याओ के समाधान खोजने का एक विनम्र प्रयास भी है। शिक्षा के क्षेत्र मे यदि "अहिंसा–प्रशिक्षण" को प्रारम्भ से ही अनिवार्य किया जाए, हृदय–परिवर्तन की प्रयोग पद्धति का अभ्यास चले तो अहिसा एव विश्वशाति की प्रतिष्ठा का एक सशक्त अभिक्रम आकार ले सकता है।

जैन विश्व भारती सस्थान (मान्य विश्वविद्यालय) जिसने अहिसा–शिक्षण–प्रशिक्षण का एक प्रभावी विकल्प विश्व के समक्ष प्रस्तुत किया है, वह मेरी कर्मभूमि भी है। अनुशास्ता गुरुदेव तुलसी व आचार्य महाप्रज्ञ का दिशा–दर्शन मुझे सदा सहज उपलब्ध रहा है जो मेरी गति का सबल है। आपके निर्देशन मे चल रहे अहिसा–प्रशिक्षण के उपक्रम ने विश्वशाति के सदर्भ मे नई सभावनाओ को जन्म दिया है जिसकी प्रतिध्वनि इस कृति मे भी उपलब्ध है।

उपाध्याय ज्ञानसागर जी महाराज का अबाधित और अनायास उपलब्ध स्नेह एव आशीर्वाद मेरे जीवन का अविस्मरणीय सस्करण है। आपके विद्यानुराग ने ही प्रस्तुत कृति को यथार्थता प्रदान की है तथा मेरी लेखनी को और अधिक सबल प्रदान किया है।

जैन विश्व भारती सस्थान के कुलपति श्री मोहनसिह भण्डारी ने भूमिका लिखकर मेरे उत्साह और पुस्तक की सार्थकता को और अधिक वृद्धिगत किया है।

प्रो० नलिन शास्त्री मेरे अग्रज ही है। उन्होने न केवल लेखन के लिए प्रोत्साहित किया अपितु लेखक–मन निर्बाध गति से विचरण करता रहे इसका भी सदैव ध्यान रखा है। उनकी यह प्रमोद भावना सचमुच श्लाघ्य ही नहीं अनुकरणीय भी है।

अहिंसा एव विश्वशाति मे रुचि रखने वाले पाठको के लिए भी यह पुस्तक किचित् भी उपयोगी बन सकी तो मै अपने श्रम को सार्थक समझूगा।

रक्षा बन्धन, 95 ***—डॉ० बच्छराज दूगड***

जैन विश्व भारती सस्थान, लाडनूं-341306

अहिसा की अथाह शक्ति को हमारे पूर्वजो ने, दार्शनिक-धर्माचार्यो ने, बडी मार्मिकता से समझा और अपनाया था। सर्व-ज्ञानी महावीर और गौतम बुद्ध, अहिसा के महान् प्रवर्त्तक थे। वर्त्तमान युग मे महात्मा गाधी ने इस भूली हुई शक्ति को फिर से जगाया। मार्टिन लूथर किग ने अपनी पुस्तक Stride Towards Freedom (1959) मे लिखा है— "The intellectual and moral satisfaction that I failed to gain from the utilitarianism of Bentham and Mill, the revolutionary methods of Marx and Lenin, the special contract theory of Hobbes, the 'book to nature optimism' of Rouseeau and the Superman philosophy of Nietzschey, I found in the nonviolent resistance philosophy of Gandhi"

लगता है कि गाधीजी के पश्चात् हिरोशिमा मे हुए हिसा के ताण्डव-नृत्य के बावजूद, पिछले पाच दशको मे हिंसा की सामग्री, हथियारो की होड और शीत युद्ध की अनिश्चित भयभीत दशा, अधिक उग्र हुई है।

असयमित तकनीकी विकास ने गरीब और धनी के बीच की खाई को और अधिक चौडा किया है, मानवीय मूल्यो का ध्वस किया है एव विश्व को आज एक ऐसी चोटी पर ला खडा किया है जहा से गिरते ही सर्वनाश हो सकता है। विज्ञान की एक सीमा है, इन्द्रियो एव तर्क की भी एक सीमा है। उस सीमा के आगे जो तथ्य है, वह विज्ञान से परे है, अहिसात्मक है। जब तक हम इस सत्य को नहीं समझ लेते, शान्ति और सुख की उपलब्धि सम्भव नही है। विज्ञान के साथ धर्म को जोडना होगा। आइन्स्टीन ने कहा— "विज्ञान बिना धर्म के लगडा है और धर्म बिना विज्ञान के अन्धा है।" अहिसा सर्व—धर्मो का सार है।

जो देश हिसक शस्त्रो का निर्माण और सचय करते है, यही कहते हैं— हथियार विश्व-शान्ति के लिए आवश्यक है, युद्ध-निराकरण के लिए जरूरी है। जो आतकवादी निरपराध का निरकुश सहार करते है और अपने जीवन पर खेलकर भी सामाजिक व्यवस्था को अस्त-व्यस्त करते हैं, यही सोचते है कि वे अपनी जाति की प्रगति और शान्ति के लिए लड रहे है। जो धर्म की रक्षा के लिए अन्य धर्मो पर प्रहार करते हैं, यही मानते है कि वे नैतिकता की रक्षा के लिए लड रहे हैं। कितना अज्ञान और कितनी भ्रान्ति? बर्बरता से मानवता नहीं पनप सकती। अपने अधिकारो को प्राप्त करने के लिए दूसरो के अधिकारो को नहीं छीना जा सकता। किसी भी समस्या के

समाधान मे हिंसा का प्रयोग, ऐसी अन्य समस्याओ को जन्म देता है, जो पहले से अधिक भयकर होती हैं। इतिहास इसका साक्षी है। समाज व्यक्ति से ऊपर है। मानवता देश-प्रेम से बढकर है। मैत्री बिना त्याग के सम्भव नहीं है। सह-अस्तित्व के लिए सहनशीलता अवश्यभावी है। अनेकान्त का सापेक्ष दृष्टिकोण अपनाना होगा। बल प्रयोग से न केवल निर्बल, बल्कि शक्तिवान भी नष्ट हो जायेगे। मानवाधिकार प्राप्त करने के लिए, सब प्राणियो का सम्मान करना होगा। कानून और दण्ड के आधार पर अपराधी को समाप्त किया जा सकता है, पर अपराध को नही। अहिसा के प्रयोग द्वारा उनका हृदय-परिवर्तन करना होगा। आर्थिक समस्याओ के समाधान के लिए और सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए विसर्जन उतना ही आवश्यक है जितना अर्जन। जब तक भौतिकता और आध्यात्मिकता का समन्वय नही होगा, शरीर, मन और चित्त का सतुलन नही होगा, विज्ञान का सारा विकास निरर्थक है। जब तक अहिसा का सही अर्थ समझ मे नही आयेगा, अहिसा की अपार शक्ति का प्रयोग नही होगा, विश्व-शान्ति स्थापित करने मे, सामाजिक न्याय दिलवाने मे और वैयक्तिक आनन्द प्राप्त करने मे सफल नही हो सकते।

डॉ० बच्छराज दूगड की इस कृति मे ऐसे अनेक विचारो का सुन्दर विवरण दिया गया है। अहिसा की शिक्षा और उसके प्रयोग पर अधिकाधिक साहित्य की आवश्यकता है। आशा है इस प्रकाशन से इस महत्त्वपूर्ण क्षेत्र मे एक और कडी जुडेगी।

डॉ० दूगड जैन विश्व भारती सस्थान मे लम्बे समय से अहिसा व शान्ति शोध विभाग मे एक प्रभावशाली व्याख्याता की भूमिका निभा रहे हैं। यह प्रयास उनके गहन अध्ययन और श्रम का फल है।

मेरी कामना है कि अहिसा और शान्ति शोध की शिक्षा देश-विदेश के प्रत्येक विश्वविद्यालय मे प्रारम्भ की जाये। सम्भवत इससे शिक्षा मे चरित्र निर्माण का जो अभाव है, उसकी पूर्ति हो सके तथा शिक्षा विश्व-शान्ति और मैत्री स्थापित करने मे सहायक सार्थक हो सके।

दीपावली, 95

—मोहन सिह भण्डारी
कुलपति, जैन विश्व भारती सस्थान
मान्य विश्वविद्यालय
लाडनू—341306 (भारत)

□ संघर्ष एवं संघर्ष निराकरण .

□ शांति-शिक्षा

□ मानवाधिकार एवं विश्वशाति :

□ अहिंसा-प्रशिक्षण के सूत्र :

□ पर्यावरण एव निशस्त्रीकरण .

संघर्ष
एवं
संघर्ष निराकरण

संघर्ष एवं संघर्ष निराकरण

सघर्ष मानव सम्बन्धों में सतत रहने वाली एक प्रक्रिया है। जब व्यक्ति-व्यक्ति के बीच सहयोग नहीं होता अथवा जब वे एक दूसरे के प्रति तटस्थ भी नहीं रहते, तो सघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो ही जाती है। सघर्ष को समाज में अस्वाभाविक भी नहीं कहा जा सकता क्योकि जब सीमित लक्ष्यो को अनेक व्यक्ति प्राप्त करना चाहे तो सघर्ष स्वाभाविक ही है।

Conflict शब्द लेटिन भाषा के Con+fligo से मिलकर बना है। Con का अर्थ है together तथा Fligo का अर्थ है--To Strike अत सघर्ष का अर्थ है--लडना, प्रभुत्व के लिए सघर्ष करना, विरोध करना, किसी पर काबू पाना आदि। ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार--दो वर्गों मे या समूहो के बीच सशस्त्र प्रतिरोध, लडाई या युद्ध सघर्ष है। विपरीत सिद्धान्तो कथनो, तर्कों आदि से विरोध भी सघर्ष है तथा विचारो, मतो और पसन्द के बीच असामजस्यपूर्ण व्यवहार भी सघर्ष है।

गिलीन एव गिलीन के अनुसार--सघर्ष वह सामाजिक प्रक्रिया है, जिसमे व्यक्ति अथवा समूह अपने उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिए विरोधी के प्रति प्रत्यक्ष हिंसा या हिंसा की धमकी का प्रयोग करते हैं। अर्थात् किसी साध्य प्राप्ति हेतु किये जाने वाले सघर्ष की प्रकृति मे ही विरोधी के प्रति घृणा और हिंसा की भावना विद्यमान होती है। प्रो० ग्रीन के अनुसार--"सघर्ष जानबूझकर किया गया वह प्रयत्न है, जो किसी की इच्छा का विरोध करने, उसके आडे आने अथवा उसे दबाने के लिए किया जाता है।" अर्थात् ग्रीन महोदय ने हिंसा व आक्रमण के साथ उत्पीडन को भी सघर्ष का एक प्रमुख तत्त्व स्वीकार किया है। किंग्सले डेविस ने प्रतिस्पर्धा को ही सघर्ष माना है। उनके अनुसार प्रतिस्पर्धा व सघर्ष मे केवल मात्रा का ही अन्तर है।

क्या संघर्ष आवश्यक है?

मूलत यदि देखा जाए तो संघर्ष परिवर्तन का एक साधन है। परिवर्तन

की आवश्यकता और इच्छा को झुठलाया नहीं जा सकता और हमें यह भी स्वीकार करना ही होगा कि परिवर्तन के साधनो से ही परिवर्तन होगा। अतएव हमें सघर्ष को सदैव हिंसक रूप मे ही न देखकर उसे परिवर्तन के सदर्भ मे भी देखना चाहिए। यह धारणा या विचार मिथ्या है कि "सघर्ष नैतिक रूप से गलत व सामाजिक रूप से अनचाहा है। सघर्ष सदैव त्याज्य या विध्वसात्मक ही नहीं होता, यह समूहो के बीच तनाव को समाप्त भी करता है, जिज्ञासाओ व रूचियो को प्रेरित करता है तथा यह एक ऐसा माध्यम भी हो सकता है जिसके द्वारा समस्याए उभारकर उनके समाधान तक पहुचा जा सकता है अर्थात् यह व्यक्तिगत और सामाजिक परिवर्तन का आधार भी हो सकता है। सघर्ष का अनिवार्यत यह अर्थ नहीं है कि यह समुदाय व सम्बन्धो के टूटने का कारण है। कोजर ने सामाजिक सघर्षों की महत्ता को प्रकाशित करते हुए लिखा है—सघर्ष असन्तुष्टि के स्रोतो को खत्म कर तथा परिवर्तन की आवश्यकता की पूर्व चेतावनी तथा नवीन सिद्धान्तो का परिचय देकर समुदाय पर एक स्थिर एव प्रभावशाली छाप छोडता है।

अत सघर्ष की दो स्थितिया है—

1 न्यायोचित लक्ष्य के लिए प्रतिस्पर्धा मे शामिल होना एव

2 ऐसा लक्ष्य जो न्यायोचित नहीं है उसकी प्राप्ति के लिए प्रतिस्पर्धा मे शामिल होना।

प्रथम यथार्थवादी सघर्ष एक विशेष परिणाम की प्राप्ति के लिए होता है इसलिए यह सघर्ष या तो मूल्यो की सरक्षा के लिए या उन जीवनदायिनी चीजो के लिए होता है जिनकी आपूर्ति कम होती है।

उपर्युक्त अर्थ मे सघर्ष कुछ परिणाम की प्राप्ति का साधन है। समाजशास्त्रियो का मानना है—सघर्ष विहीन समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती। मेक्स वेबर के अनुसार—"सामाजिक जीवन से हम सघर्ष को अलग नहीं कर सकते। हम जिसे शाति कहते है वह और कुछ नहीं है अपितु सघर्ष के प्रकार व उद्देश्यो तथा विरोधी मे परिवर्तन है।' रोबिन विलियम्स के अनुसार—किसी भी परिस्थिति मे हिसा या सघर्ष पूर्ण रूप से उपस्थित या अनुपस्थित नहीं हो सकता। यहा भगवान महावीर की दृष्टि ज्ञातव्य है— उनके अनुसार समाज केवल हिंसा या केवल अहिंसा के आधार पर नहीं चल सकता। प्रो० महेन्द्र कुमार के अनुसार—हिसा की पूर्ण अनुपस्थिति असम्भव

है क्योकि अन्तर्राष्ट्रीय समाज से संघर्ष का पूर्ण विलोपन सम्भव नहीं है और न ही यह वाछनीय है क्योंकि हिंसा की अहिंसक-समाज निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका है या हो सकती है। अतएव संघर्ष को नियन्त्रित या इच्छित दिशा में गतिशील किया जा सकता है, उसे पूर्ण रूप से हटाया नहीं जा सकता।

महात्मा गाधी ने भी सघर्ष की अनिवार्यता को स्वीकार किया है। जे०डी० टाटा ने जब गांधीजी से यह पूछा—बापू ! आप तमाम उम्र संघर्ष करते रहे हैं (ब्रिटिश लोगो से), उनके चले जाने के बाद आपकी सघर्ष की आदत का क्या होगा? क्या आप इसे छोड़ देगे? गाधीजी का उत्तर था—नहीं मैं इसे अपने जीवन से कभी अलग नहीं कर सकता। लेकिन गाधीजी ने कार्लमार्क्स की तरह सघर्ष को सामाजिक कानून के रूप मे नहीं माना। उन्होंने सघर्ष की अहिंसक पद्धति विकसित करने पर बल दिया।

विध्वंसात्मक बनाम उत्पादक संघर्ष

सघर्ष विध्वसात्मक भी हो सकता है और उत्पादक भी। एक सघर्ष को उस समय विध्वसात्मक कहा जा सकता है जब इस सघर्ष मे सहभागी व्यक्ति इसके परिणामो से असन्तुष्ट हो तथा वे यह अनुभव करते हो कि सघर्ष के परिणामस्वरूप उन्होने कुछ खोया है। यही उत्पादक होगा, जब सघर्ष मे सहभागी व्यक्ति इसके परिणामो से सन्तुष्ट हो तथा वे यह अनुभव करते हो कि सघर्ष के परिणामस्वरूप उन्होने कुछ प्राप्त किया है।

दृष्टिकोण, व्यवहार और संघर्ष

विध्वसात्मक दृष्टिकोण और व्यवहार को सघर्ष के समकक्ष या सघर्ष मानना भ्रामक है। तीनो का स्वतत्र अस्तित्व है। सघर्ष एक प्रकार से विरोध व एक ऐसा लक्ष्य है जो दूसरे की लक्ष्य प्राप्ति मे बाधक है। सामान्य रूप से सघर्ष के दो रूप है—

1 समाज के विभिन्न समूहो की वस्तुनिष्ठ रूचियो मे भेद एव

2 सामाजिक गतिविधियो के आत्मनिष्ठ लक्ष्यो मे विरोध।

दृष्टिकोण व व्यवहार जब संघर्ष से जुड़ जाते हैं तब उन्हे निषेधात्मक दृष्टिकोण व व्यवहार कहा जाता है। इस प्रकार के निषेध अचानक घृणा या प्रत्यक्ष हिंसा के रूप मे प्रकट होते हैं। जातीय और प्रजातीय सघर्षों मे सामाजिक दूरी पूर्वाग्रहो के कारण होती है जबकि सरचनात्मक हिंसा में यह भेदभाव के रूप मे प्रकट होती है। इस प्रकार सघर्ष का जो स्वरूप उभरता है, उसे

इम इस प्रकार दर्शा सकते हैं—

संघर्ष = विरोध — पक्षो की रूचियों मे / कर्त्ताओं के लक्ष्य मे

- अभिवृत्ति
  - घृणा
  - सामाजिक दूरी
- व्यवहार
  - प्रत्यक्ष हिंसा
  - सरचनात्क हिंसा

विरोधी हिसा
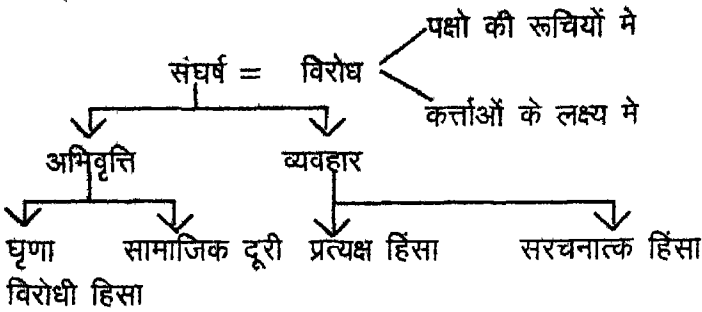
सम्बन्ध न होने की अपेक्षा संघर्षपूर्ण सम्बन्ध उत्तम है

प्रसिद्ध उक्ति है—'पाप से घृणा करो, पापी से नहीं। अन्याय से घृणा या बिरोध आवश्यक है क्योकि यह अन्याय के सस्थाकरण को रोकता है लेकिन अन्यायी से घृणा राम्बन्धो के सुधार को रोकता है। इसी सन्दर्भ मे यह कहा जा सकता है—सघर्ष पर आधारित सम्बन्ध किसी प्रकार के सम्बन्ध न होने से अच्छे हैं। मेरे और आपके बीच सघर्ष यह दर्शाता है कि कोई एक चीज हम दोनो मे सामान्य है। हमारी समस्या मेरी और आपकी है। इसलिए हम इस समस्या से लडे न कि एक दूसरे से। सघर्ष के सावधानीपूर्ण प्रयोग से समाज मे सामजस्यपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किये जा सकते है। इस निष्कर्ष पर पहुचने के दो आधार हैं—

1 मानवीय एकता

2 कर्त्ता बनाम व्यवस्था

प्रत्येक मनुष्य एक दूसरे से अनेक बन्धनो व सामाजिक सम्बन्धो से जुडे हैं। यदि उनके बीच सामजस्यपूर्ण सम्बन्ध हे तो वे उसे प्रदर्शित कर उन्हे और आगे बढा सकते है और यदि उनके बीच सामजस्य नहीं है तो हम उन्हे यह समझा सकते हैं कि यह मानवीय एकता के लिए आवश्यक है। और यदि उनके बीच किसी प्रकार के सम्बन्ध नहीं हैं, तो यह मानवीय एकता का बहिष्कार है।

किसी व्यक्ति के अन्यायी बनने मे परिस्थितियो व व्यवस्था का भी योगदान होता है। सम्बन्धो को स्वीकार न करना अन्यायी की अस्वीकृति है जबकि असामजस्यपूर्ण सम्बन्धो का स्वीकरण व्यवस्था व व्यक्ति सुधार की दिशा मे प्रस्थान है।

संघर्ष का आधार

संघर्ष का मूल कारण व्यक्ति की अनन्त इच्छाए या लोभ की प्रवृत्ति है। जैन दर्शनानुसार इच्छा विस्तार समस्त बुराईयों की जड़ है। इच्छाओं की पूर्ति हेतु दूसरों का शोषण होगा। अर्जित पदार्थों के सरक्षण हेतु शस्त्रीकरण होगा जो अन्तत युद्ध या हिंसा को जन्म देगा। सुकरात ने भी कहा था—लोग सरल जीवन पद्धति से सन्तुष्ट नहीं होगे, वे अपनी इच्छाओं का विस्तार चाहेंगे · दूसरे भी ऐसा ही चाहेंगे परिणाम होगा—युद्ध।

मूलत सघर्ष तब होता है जब इच्छा पूर्ति हेतु विरोधी क्रियाए घटित होती हैं। जब दो व्यक्ति वह कार्य करना चाहें जो परस्पर असगत है तो तनाव स्वाभाविक है क्योकि इससे व्यक्ति समुदाय और राष्ट्रो की इच्छा पूर्ति मे बाधा उत्पन्न होती है। समग्र इच्छाओ की पूर्ति के प्रयत्न तो दूसरो की अतृप्ति की कीमत पर ही किये जा सकते है। सामान्य रूप से सघर्ष के तीन आधार वर्णित किये जा सकते हैं—

1 एक या अधिक पक्ष

2 पक्षो के बीच सम्बन्ध

3 वह व्यवस्था या तत्र जिसमे ये पक्ष कार्य करते हैं।

अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धो मे सघर्षो के मुख्य कारण वर्गों के बीच तनाव, नृजातीय स्थितियो तथा सास्कृतिक प्रारूपो की भिन्नता है जबकि अन्तर्राष्ट्रीय सघर्षों मे व्यक्तियो का राष्ट्रीय चरित्र व राजनैतिक ढाचा मुख्य कारण बनते हैं।

विभिन्न पक्षो के बीच सम्बन्ध यदि असमानताओ पर आधारित हो, जैसे—राजनैतिक शक्ति मे असमानता, सम्पत्ति का असमान वितरण, विरोधी धर्म और वैचारिक परम्पराए, मूल्यो की भिन्नता आदि, तो ये भी सघर्ष के मुख्य कारण बनते है।

जिस व्यवस्था मे विभिन्न पक्ष कार्य करते हैं, उसमे खुली राजनैतिक एव स्वतत्र न्यायायिक व्यवस्था अपेक्षित है। ऐसी व्यवस्था मतभेदों को दूर करने के साधन उपलब्ध करवा सकती है तथा असमानता एव मूल्य सम्बन्धी भेदो को और अधिक गहरा होने से बचा जा सकता है तथा इस तरह सघर्ष के सस्थाकरण को रोका जा सकता है।

व्यवस्था के विभिन्न पक्षों मे एकता परस्पर निर्भरता के स्तर, सगति एवं

समानता पर निर्भर करती है। जितनी अधिक एकता होगी, असन्तुष्टि उतनी ही कम होगी तथा सघर्ष भी कम होगे। परस्पर निर्भरता के अभाव मे एकता का भी अभाव होगा तथा असन्तुष्टि एव सघर्ष अधिक होंगे।

व्यवस्था के आन्तरिक कारक जैसे— वैचारिक भिन्नताए, आर्थिक विषमता, नौकरशाही आदि भी सघर्ष के लिए आधार बनते हैं।

संघर्ष के प्रकार

प्रो० सिम्मेल (Simmel) ने सघर्ष को चार प्रकारो मे विभाजित किया है—

1. युद्ध (War)
2. पुश्तैनी कलह (Feud or Factional strife)
3. मुकदमे बाजी ((Ligitation)
4. मत वैभिन्य का सघर्ष (Conflict of impersonal ideas)

प्रो० गिलीन एव गिलीन ने सघर्ष के पाच प्रकारो की व्याख्या की है—

1. व्यक्तिगत सघर्ष— (Individual conflict)

परस्पर विरोधी लक्ष्यो को लेकर दो व्यक्तियो के बीच होने वाले सघर्ष को व्यक्तिगत सघर्ष कहा जा सकता है। सघर्षशील लोगो मे व्यक्तिगत घृणा, द्वेष, क्रोध, शत्रुता आदि होती है तथा स्वय के हितो के लिए दूसरे को शारीरिक हानि पहुचाने अथवा नष्ट तक कर देने की तत्परता होती है।

व्यक्तिगत सघर्ष आन्तरिक और बाह्य दोनो प्रकार के होते हैं। आन्तरिक कारको मे व्यक्ति की कुण्ठा, स्वार्थवृत्ति तथा रूचियो की प्राथमिकता के निर्धारण का प्रश्न प्रमुख कारण होते है। बाह्य कारको मे व्यक्तियो की रूचियो मे टकराहट ही प्रमुख रूप से कारण बनता है।

2. प्रजातीय सघर्ष (Racial conflict)

कभी—कभी कुछ प्रजातिया दूसरो पर शासन करना अपना अधिकार मानती हैं जिसके परिणाम स्वरूप अन्य प्रजातियो से उनका सघर्ष हो जाता है। अमेरिका मे नीग्रो और श्वेत प्रजाति, श्वेत और जापानी प्रजाति तथा अफ्रीका में श्वेत और काली प्रजाति के बीच हिंसात्मक घटनाए होती रही हैं। प्रजातीय श्रेष्ठता या हीनता इस प्रकार के सघर्ष का प्रमुख कारण बनती है।

प्रगति के बावजूद प्रजातीय भेदभाव—राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक,

सास्कृतिक आदि क्षेत्रों में कानून के रूप में तथा व्यवहार में जातीय भेदभाव के रूप में विद्यमान है। प्रजातीय भेदभाव--भेदभाव करने वाले तथा उससे प्रभावित दोनों ही पक्ष के लिए हानिकारक है।

प्रजातीय भेदभाव के अनेक रूप हैं। कहीं पर यह सरकारी नीतियों से सपुष्ट है तो कहीं प्रच्छन्न रूप में, जिससे विभिन्न वर्गों के बीच विषमता पाई जाती है। राजनैतिक क्षेत्र मे विश्व के किसी भी देश में प्रजातीय भेदभाव को मान्यता नहीं है परन्तु कुछ राष्ट्रों मे वहा की नीतियो एव परिस्थितियो के कारण सभी लोगो को मत देने, सरकारी सेवा मे प्रवेश पाने एव सार्वजनिक पदो के लिए चुनाव लडने का अधिकार नहीं है। आर्थिक क्षेत्र मे प्रजातीय भेदभाव के परिणाम स्वरूप कुछ विशेष प्रजाति के लोग कम वेतन पर मजदूर के रूप मे सदैव उपलब्ध रहते हैं। प्रजातीय भेदभाव सार्वजनिक स्थान, स्वास्थ्य तथा चिकित्सा सम्बन्धी सुविधाओ, सामाजिक सुरक्षा एव पारस्परिक सम्बन्धो मे भी देखा जा सकता है। सास्कृतिक क्षेत्र मे जातीय भेद-भाव जीवन-स्तर की विभिन्नता से जन्म लेता है।

भेदभाव की यह भावना उन समाजो मे अधिक पाई जाती है जहा सास्कृतिक, सामाजिक तथा आर्थिक जीवन मे बहुत अधिक विरोधाभास होता हे। नस्ल रग तथा वश की दृष्टि से जिन राष्ट्रो में अलगाव की भावना है एव जहा सस्कृति, रीति-रिवाज एव परम्पराओ के कारण भिन्नताए हैं, वहा की स्थितिया वास्तव मे ही सोचनीय है। जातीय पृथक्करण की नीतिया विश्व के लिए एक बडा कलक है।

3. वर्ग-सघर्ष (Class Conflict)

वर्ग सघर्ष का इतिहास मानव जाति का इतिहास है। प्राचीनकाल मे मालिक व दास, मध्ययुग मे सामन्त व सेवक तथा कामदार, आधुनिक युग मे मजदूर व पूजीपति आदि वर्ग रहे हैं, क्योकि विभिन्न समूहो की सामाजिक और आर्थिक स्थिति मे परस्पर भिन्नताए पाई जाती हैं, फलत उनके जीवन प्रतिमान एक-दूसरे से मेल नहीं खाते और ये समूह कालान्तर मे विभिन्न वर्गों का रूप ले लेते हैं। प्रत्येक वर्ग सामाजिक एव आर्थिक उपयोगिता की दृष्टि से स्वय को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मानता है। इस प्रकार की स्थिति उनके बीच विवादो व सघर्ष को जन्म देती है। श्रमिक व पूजीपति, जमींदार व कृषक, उच्च व निम्न आदि वर्ग इसके उदाहरण हैं। वर्ग सघर्ष विश्व के सभी समाजों

में पाया जाता है। कार्लमार्क्स ने कहा था—"समाज सदैव दो आर्थिक वर्गों मे बटा रहेगा—शोषक व शोषित। ये वर्ग सदैव एक-दूसरे के साथ सघर्षरत रहेगे जब तक कि वर्ग-विहीन समाज की स्थापना न हो जाय।"

4. जातीय संघर्ष (Caste Conflict)

जातीय सकीर्णता आज सामाजिक सघर्षों का एक प्रमुख कारण बनी है। हम कुछ जातीय पूर्वाग्रहो का पालन करते हैं क्योकि इनसे हमे सुरक्षा, प्रतिष्ठा तथा मान्यता जैसी कतिपय गहन आवश्यकताओ की सतुष्टि होती है। यद्यपि कानूनी रूप से विभिन्न जातियो के बीच ऊच-नीच की भावना को स्वीकार नहीं किया गया है फिर भी ऊच-नीच की भावना के कारण विभिन्न जातियो मे बैर-भाव रहता है तथा जातीय सघर्ष चलते रहते है। भारत मे जातीय तनाव अधिक देखने को मिलता है। जैसे मणिपुर मे नागा व कुकी जाति का विवाद बिहार मे लाला व ब्राह्मण जाति का विवाद आदि-आदि। इन जातीय विवादो के कारण आज भारतीय राजनीति का मुख्य आधार ही जातिवाद बन गया है, जिससे सामान्य जनता सदैव आपसी सघर्षो मे उलझी रहती है।

5. राजनैतिक संघर्ष (Political Conflict)

राजनैतिक सघर्षों के दो रूप है— राष्ट्रीय सघर्ष एव अन्तर्राष्ट्रीय सघर्ष। जातिवाद, साम्प्रदायिक तनाव, राजनैतिक तनाव, उग्रवाद, पृथक्करण विभाजन आदि राष्ट्रीय सघर्षों के प्रमुख कारण बनते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय सघर्ष की अभिव्यक्ति के भी अनेक रूप हैं जैसे घृणा तथा आक्रामकता की अभिवृत्ति जिसके फलस्वरूप समाचार पत्रो, रेडियो व दूरदर्शन पर भडकीले समाचार प्रसारित कर मनोवैज्ञानिक युद्ध किया जाता है। स्वजातिवाद की पृष्ठभूमि भी अन्तर्राष्ट्रीय तनाव का एक प्रमुख कारण है। अडोर्नो ने यह दर्शाया है—जिन व्यक्तियो मे यह सोचने की अतिरजित प्रवृत्ति है कि उनका अपना समूह अथवा जाति अन्य जातियो से अत्यन्त श्रेष्ठ है, उनका सामान्य दृष्टिकोण रुढिवादी होता है तथा वे शक्ति की प्रशसा व पराजितो से घृणा करते है जिससे वे दूसरों को अपने समान स्थान देने को तैयार नहीं होते। फलत विदेशियों व अल्पसख्यको को हीन दृष्टि से देखा जाता है तथा उनमे असुरक्षा की भावना उत्पन्न होती है। इससे सैनिक सगठनों को बल मिलता है। राष्ट्रवादी अभिवृत्तियो के साथ-साथ अन्य देशो के प्रति प्रबल नकारात्मक भावना हो

और प्रबल अन्तर्राष्ट्रीय भावना का अभाव हो तो उस स्थिति में अन्तर्राष्ट्रीय सघर्ष उत्पन्न हो ही जाता है और वह स्थिति शाति तथा एकता की बजाय युद्ध की प्रेरक होती है।

उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त वैचारिक भिन्नताए, विस्तारवादी नीतिया, व्यापारिक एव सीमा-विवाद, अस्त्र-शस्त्र आदि भी अन्तर्राष्ट्रीय विवादो के प्रमुख कारण बनते हैं।

संघर्ष की प्रक्रिया

कुण्ठा, अन्याय, आक्रामकता व परमाणु अस्त्र-शस्त्रों का निरन्तर भय, सघर्ष के लिए जिम्मेदार कहे जा सकते है।

कुण्ठा—फ्रायड ने व्यक्ति के अन्दर एक ऐसी अचेतन शक्ति की परिकल्पना की है जिसके कारण वह युद्ध का स्वागत करता है। फ्रायड का मत है कि निराशा के कारण मनुष्य एक ऐसे अवरुद्ध आक्रमण के लिए प्रेरित होता है जो अपनी अभिव्यक्ति के लिए एक ऐसा मार्ग ढूढने का प्रयत्न करता है जो सामाजिक दृष्टि से स्वीकृत हो और उसके अह को भी स्वीकार्य हो।

सामान्य रूप मे निराशा को उत्पन्न करने वाली तीन मुख्य स्थितिया हैं—

1 प्रतिकूल वातावरण द्वारा प्रस्तुत बाह्य बाधाए, जो व्यक्ति को अपने लक्ष्य प्राप्ति से रोकती है।

2 मनुष्य के पराह द्वारा प्रस्तुत आन्तरिक बाधाए जो उसकी अस्वीकार्य प्रवृत्तियो की उन्मुक्त अभिव्यक्ति को रोकती है, तथा

3 दो पारस्परिक विशिष्ट प्रवृत्तियो का एक साथ उत्प्रेरण, जहा पर एक व्यक्ति की सतुष्टि से दूसरे व्यक्ति के तात्कालिक सतोष में बाधा पडती है।

उपर्युक्त तीनो ही स्थितिया व्यक्ति की कुण्ठा के लिए जिम्मेदार हैं जो अनन्त सघर्ष को जन्म देती है।

अन्याय—सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक क्षेत्र मे किया जाने वाला अन्याय भी सघर्ष की प्रक्रिया को जन्म देता है। अन्याय की निरन्तरता प्रतिशोध व विवादो को जन्म देती है तथा व्यक्ति, समाज व राष्ट्र सघर्षरत् हो जाता है।

आक्रामकता—कुण्ठाग्रस्त व्यक्ति प्रतिक्रिया स्वरूप आक्रामक हो जाता है तथा आक्रामकता ही उसका व्यवहार व आदत बन जाती है। सामाजिक व राजनैतिक सघर्षों मे आक्रामकता एक प्रमुख कारण बनती है।

परमाणु अस्त्र-शस्त्रों का भय—आणविक अस्त्रो ने अपने प्रारम्भिक काल से ही अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति मे उथल-पुथल शुरू कर दी थी। परिणाम स्वरूप उस समय की महाशक्तियो के बीच परस्पर अविश्वास की वृद्धि और शीतयुद्ध को प्रोत्साहन मिला। आणविक शक्ति से सम्पन्न होने की लालसा ने ही शस्त्रीकरण की दौड को जन्म दिया तथा सैनिक गुटो के निर्माण का भी एक कारण बना। एशिया और अफ्रीका के देश भी आणविक कूटनीति से बच न सके तथा विश्व के देशो की सैनिक व्यूह रचना ही बदल गई।

आणविक अस्त्रो की सैनिक कूटनीति ने विश्व की अर्थव्यवस्था पर भी प्रभाव डाला। विकासशील राष्ट्रो की राष्ट्रीय आय का एक बडा हिस्सा शस्त्रीकरण मे खर्च होने लगा। विश्व का सैनिक खर्च जो प्रारम्भ मे 25 बिलियन डॉलर था, आज यह 500 बिलियन डॉलर तक पहुच गया है तथा सन् 2000 तक इसके 940 बिलियन डॉलर तक पहुचने की उम्मीद है। अतएव परमाणु कूटनीति आज पूरे विश्व पर हावी है तथा विश्व को निरन्तर सघर्षरत् रखे हुए है।

सघर्ष का विकास माइक्रो व मेक्रो दोनो ही स्तर पर होता है। सूक्ष्म स्तर पर सघर्ष का विकास तब होता है जब एक व्यक्ति स्वय के व्यवहार के परिप्रेक्ष्य मे समूह के व्यवहार को देखता है। प्रारम्भिक मनोवैज्ञानिक अध्ययनो मे व्यक्तियो के व्यवहार को समूह-सघर्षों का प्रमुख कारण माना गया। समकालीन सघर्षों मे भी व्यक्तियो के व्यवहार की अह भूमिका स्पष्ट है।

समाजशास्त्री, मानवशास्त्री तथा राजनीतिज्ञो एव सगठन तथा सचार सिद्धान्तो ने सघर्ष की मेक्रो दृष्टि को ग्रहण किया। इन्होने सघर्ष को एक ऐसी स्थिति माना है जिसमे एक विशेष समूह दूसरे का सक्रिय प्रतिद्वन्द्वी बनता है। अर्थात् व्यक्तिगत स्तर पर व्यक्तिगत व्यवहार तथा समूह के स्तर पर समूहो का परस्पर विरोध सघर्ष के विकास का प्रमुख कारण है।

सघर्ष निराकरण

संघर्ष के उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् सघर्ष निराकरण या कलह-शमन पर भी विचार उपयुक्त होगा। सघर्ष-निराकरण का अर्थ सघर्ष-विलोपन (Conflict elimination) नहीं है। इसका अर्थ है—निराकरण का सही रास्ता। प्रो० महेन्द्रकुमार के अनुसार—सघर्ष निराकरण का अर्थ है—आन्तरिक एव समूहों के बीच सघर्षों का शांतिपूर्ण समाधान। चूकि सघर्ष के मूल मे व्यक्ति

या समूह के विश्वास व दृष्टिकोणों की अहं भूमिका है, इसलिए निराकरण का स्वरूप गलत विश्वास व दृष्टिकोण को बदलने में ही निहित है।

अभिवृत्ति परिवर्तन और संघर्ष निराकरण

हाल ही के वर्षों में इस बात की ओर व्यापक रुचि रही है कि अपने देश की जनता की अभिवृत्तियो तथा दूसरे देशों की जनता के प्रति अपनी अभिवृत्तियों में क्रियाशील होकर परिवर्तन लाए जायें। विभिन्न सरकारे भी लोगों की अभिवृत्तियो को बदलने के लिए प्रयत्नशील हैं। 1930 में अमेरिका मे रुजवेल्ट ने आर्थिक समस्याओ से निपटने के लिए कर्मचारियो तथा किसानो के प्रति वहा के लोगो की अभिवृत्तियो मे भारी परिवर्तन किये। भारत मे गाधीजी ने उन लाखो लोगो की अभिवृत्तियो को बदलने का विशाल कार्य हाथ मे लिया जो अग्रेजी शासन के प्रति या तो उदासीन थे या भयभीत। उन्होने स्वराज तथा प्रजातंत्र के प्रति अनुकूल अभिवृत्ति व विदेशी शासन के विरूद्ध अभिवृत्ति निर्माण के प्रयत्न किये तथा साथ ही अग्रेजो की अभिवृद्धि बदलने का भी प्रयत्न किया ताकि वे उपनिवेशवादी नीति का अत करने के अनुकूल हो सके तथा अन्तर्राष्ट्रीय सघर्ष को टाला जा सके। जातीय सघर्षों को समाप्त करने की दृष्टि से उन्होने हिन्दुओ व मुसलमानो की अभिवृत्ति परिवर्तन के प्रयास किये ताकि वे एक दूसरे के प्रति तथा हरिजनो के प्रति अनुकूल हो सके। यह हमारी अभिवृत्तियो का व्यापक परिवर्तन ही है जिसके बल पर हमने एक राष्ट्र का निर्माण किया तथा स्वराज प्राप्ति के बाद की कठिनाईयो को झेल लिया।

अन्तर्राष्ट्रीय विवादो व असमानताओ पर आधारित संघर्षों के निदान हेतु हाल ही मे यह अभिवृत्ति विकसित हुई है कि अल्प-विकसित राष्ट्रो का सहयोग करना हमारा कर्तव्य है। उद्योगपतियो व पूजीपतियो की अभिवृत्ति को बदलने के प्रयास भी हुए हैं ताकि वे व्यक्तिगत हित की जगह राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय हित के लिए कार्य कर सके। राजनैतिक अभिवृत्तियो मे भी परिवर्तन के फलस्वरूप आज प्रत्येक राष्ट्र की स्वतत्रता तथा स्वायत्तता को महत्त्व मिला है तथा हर राष्ट्र के सरकार बनाने के अधिकार को स्वीकृति मिली है।

सघर्ष निराकरण के पक्ष मे अभिवृत्ति परिवर्तन हेतु मुख्य रूप से निम्नलिखित विधियो का प्रयोग किया जाता है—

1. व्यक्तियों को बाह्य प्रभाव में रखकर उनमें होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन—इस विधि मे व्यक्तियो के किसी समूह का अभिवृत्ति परीक्षण किया जाता है, तत्पश्चात् समूह को एक विशेष प्रकार का अनुभव कराने के पश्चात् पुन अभिवृत्ति परीक्षण किया जाता है। दोनो परीक्षणो के परिणामो मे अन्तर अभिवृत्ति परिवर्तन को दर्शाता है।

2. अन्योन्यक्रिया विधि—इस विधि के अनुसार व्यक्ति मे जिस तरह की अभिवृत्ति का निर्माण चाहते हैं, उसके अनुकूल सामाजिक परिवेश मे रखा जाता है ताकि उसे अन्योन्यक्रिया करने का अवसर मिल सके।

3. समूह परिचर्चा—परिचर्चा पद्धति मे व्यक्ति की सक्रिय सहभागिता के कारण वह व्यक्तिगत रूप से उसके प्रति अनुरक्त हो जाता है तथा व्यक्तिगत निश्चय की अपेक्षा समूह निर्णय अनिवार्य रूप से पालनीय होते हैं। अभिवृत्ति मे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन लाने के लिए यह आवश्यक है कि वैयक्तिक अहमन्यता को सन्निहित किया जाए। ऐसा वैयक्तिक आवेष्टन सामाजिक स्तर पर परस्पर क्रिया-प्रक्रिया के आदान-प्रदान द्वारा बढता है। परिणामस्वरूप अभिवृत्ति परिवर्तन भी समूह के प्रतिमानो के अनुकूल ही होता है।

4 भावनात्मक अपील—इस विधि मे समूह के प्रतिमानो को ध्यान मे रखकर उनके निर्माण मे व्यक्ति के योगदान को बताकर उसके भावो को उभारा जाता है।

उपर्युक्त विधियो द्वारा हम किसी विषय या समस्या के प्रति व्यक्ति के दृष्टिकोण मे परिवर्तन कर सकते है अर्थात् जो व्यक्ति पहले जिस समस्या या विषय के प्रतिकूल थे, उनके सम्बन्ध मे अब वे अनुकूल अभिवृत्ति वाले होने लगते हैं।

सघर्ष निराकरण की विधिया—

शातिपूर्ण समाधान या कलह-शमन की दृष्टि से हिसा या कानून पर आधारित तरीको को स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योकि वे स्थायी समाधान प्रदान नहीं करते। हिसा या कानून का समाधान स्वैच्छिक नहीं, दबाव द्वारा स्वीकृत होता है। वार्त्ता, सामूहिक सौदेबाजी एव सधिया आदि भी कलह-शमन के लिए प्रयुक्त होती है पर ये भी उपयोगितावादी होने के कारण नैतिक शक्ति नहीं रखते। गाधीजी की दृष्टि मे हृदय परिवर्तन या नैतिक शक्ति द्वारा किया गया समाधान ही स्थायी होगा। मूलत किसी भी विधि की

उपयुक्तता का आकलन इस आधार पर किया जा सकता है कि निराकरण के पश्चात् दोनों पक्षों के बीच सम्बन्ध कैसे रहेंगे? प्रो० गाल्टुंग ने कलह-शमन हेतु गाधीवादी विधियों के चार आधार प्रस्तुत किये हैं—

1. संघर्ष या सघर्षरत् पक्ष से अलग हो जाना (Decoupling)

सघर्ष निराकरण हेतु हमारा प्रथम प्रयास यह हो कि हम उससे अलग हो जाए। असहयोग, अवज्ञा, सत्याग्रह आदि सम्बन्ध विच्छेद के उदाहरण हैं। सामाजिक, राजनैतिक या व्यापारिक सम्बन्ध तोड़ना सतही कार्य है, मूलत गाधी मानवीय एकता मे विश्वास करते हैं तथा उनका विश्वास हृदय परिवर्तन मे है।

2. एकता (Integration)

सामाजिक आर्थिक व राजनैतिक स्तर पर जो रुकावटें हैं, वे मनुष्य-मनुष्य के बीच भेद-रेखाए बनाती हैं। चूकि आध्यात्मिक स्तर पर हम एक हैं, इसलिए अहिंसा की शक्ति से ये भेद-रेखाए दूर की जा सकती हैं।

3 समझौता (Compromise)

सत्याग्रह के आधार पर यदि हम जीत भी जाए एव हमारी बाते मान ली जाए, फिर भी हमे समझौते के लिए तत्पर रहना चाहिए। इससे सघर्ष निराकरण के पश्चात् भी हमारे सम्बन्ध मधुर रहेगे। गाधी जी के अनुसार ऐसा समझौता मूल्यो व मूलभूत तत्वो की कीमत पर नहीं होना चाहिए।

4 विरोधों का निराकरण (Resolution of incompatibility)

जिस सघर्ष के निराकरण की बात होती है, निश्चित ही उस सघर्ष की जडे गहरी नहीं होती। सघर्ष की वास्तविक जडे तो समाज-सरचना मे छिपी होती है इन्हे खत्म करने के लिए आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक ढाचे को ही बदलना पडता है। यह बदलाव धीरे-धीरे आता है तथा इसे अहिंसक साधनों से लाया जा सकता है।

सघर्ष निराकरण हेतु गांधीवादी विधियां—

1. प्रदर्शन (Demonstration)

अन्याय एव सरकार के गलत कार्यों के विरूद्ध शिक्षित लोगो को सगठित करने का एक अच्छा साधन है—प्रदर्शन, जिसका सत्याग्रह में अपना एक विशिष्ट स्थान है। गाधी जी ने इसका प्रयोग 1908 में दक्षिणी अफ्रीका मे रजिस्ट्रेशन सर्टिफिकेट एक्ट को जलाने के लिए, जलियांवाला बाग के

विरोध मे, दाण्डी यात्रा के रूप में, 1932 में द्वितीय अहिंसक असहयोग आन्दोलन मे तथा 1942 में क्विट इण्डिया मूवमेंट के समय किया था।

2. पिकेटिंग (Picketing)

पिकेटिंग का उद्देश्य सरकार पर सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक दबाव डालना है तथा लोगो के बीच राजनैतिक चेतना और स्वदेशी चेतना जागृत करना है। गाधी जी ने इसका प्रयोग 1907 मे दक्षिणी अफ्रीका मे तथा 1920-22 व 1930-34 के अहिंसक असहयोग आन्दोलन मे किया।

3. बहिष्कार (Boycott)

गाधी जी ने अफ्रीका मे ऑफिस तथा रजिस्ट्रेशन प्रमाण-पत्रो का बहिष्कार किया तथा भारत मे 1905 व 1930 मे विदेशी सामान, विदेशी सुविधाओ व विदेशी सस्थाओ का बहिष्कार किया।

4. हड़ताल (Strike)

श्रम समस्याओ के निराकरण हेतु गाधी जी ने हडताल को सत्याग्रह की एक पद्धति के रूप मे विकसित किया। गाधी जी न्यायपूर्ण शिकायतो को दूर करने के लिए शातिपूर्ण अहिसक हडतालो के विरोधी नहीं थे, पर ऐसी कोई हडताल के पक्षधर नहीं थे, जो तोड-फोड पर आधारित तथा औचित्य की दृष्टि से समर्थनीय न हो।

5. असहयोग (Non-cooperation)

गाधी जी के अनुसार–"असहयोग तत्त्वत शोधन प्रक्रिया है। यह लक्ष्यो से कहीं अधिक कारणो का उपचार करता है। यह हमारे सामाजिक सम्बन्धो को विशुद्ध आधार पर अधिष्ठित करने का आन्दोलन है ताकि उनकी मीमासा हमारे आत्मसम्मान एव गौरव के अनुकूल की जा सके। यह अपने अतिम विश्लेषण मे कुछ सुविधा दे सकने वाली बुराई से सम्बन्ध विच्छेद करने के कारण उत्पन्न कष्टो का स्वेच्छया वरण है।" गाधी जी ने न्याय प्राप्ति हेतु इस विधि का 1920-22 व 1930-34 मे सर्वाधिक सहारा लिया।

6. सविनय अवज्ञा (Civil disobedience)

'जब कानून बनाने वाले की गलती सुधारने की चेष्टाए अर्जी आदि देने के बाद भी विफल हो जाती हैं तब यदि आप उस गलती के सामने सिर झुकाने के लिए तैयार नहीं हैं तो आपके सामने दो ही मार्ग हैं—या तो आप भौतिक शक्ति से उसे अपनी बात मानने पर विवश कर दें या उस कानून

को तोड़ने का दण्ड झेलकर व्यक्तिगत रूप से कष्ट वरण करें।" इस अवज्ञा को सविनय इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह सापराध भावना से नहीं होती है। 1920-22,1930-34 व 1942-47 में गांधी जी ने इस विधि का प्रयोग स्वराज प्राप्ति के लिए किया था।

7. आत्मशुद्धि (Self-Purification)

आत्मशुद्धि में नैतिक शक्ति है जो विरोधी के हृदय पर सीधा प्रभाव डालती है तथा उसे अपनी गलतियो का अहसास कराती है। आत्मशुद्धि असहयोग प्रविधि की जड है। गाधी जी ने कहा था—"मै इस आधारभूत निष्कर्ष पर पहुचा हू कि यदि तुम कोई सचमुच महत्त्वपूर्ण कार्य करना चाहते हो तो तुम्हे न केवल विवेक को सन्तुष्ट करना होगा बल्कि हृदय को भी प्रेरित करना होगा। बुद्धि का आवेदन मस्तिष्क के प्रति अधिक होता है किन्तु हृदय तक प्रवेश तपश्चर्या के द्वारा ही सम्भव है। इससे मनुष्य की आन्तरिक सहानुभूति उद्भूत होती है इसलिए यह अधिक स्थायी है। आत्मशुद्धि का अर्थ है—न्याय एव सत्य की चेतना एव असत्य से स्वय को अलग करने की शक्ति का सग्रह। यदि इसे उपलब्ध किया जा सके तो सामाजिक, आर्थिक एव राजनैतिक सम्बन्ध स्वत ही परिवर्तित हो जायेगे।

उपर्युक्त विधियो के अलावा भी कलहशमन हेतु कुछ और गाधीवादी तरीके है, जैसे—हिजरात, करो का भुगतान न करना, समानान्तर सरकार आदि।

सघर्ष निराकरण की कूटनीतिक विधिया

उपर्युक्त गाधीवादी विधियो के अतिरिक्त सघर्ष निराकरण की कुछ अन्य कूटनीतिक विधिया भी है, जिनमे से कुछेक विधियो का उल्लेख आवश्यक है—

1 वार्ता (Negotiation)

अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे और अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अर्थ मे वार्ता एक वैधानिक, व्यवस्थित तथा प्रशासनात्मक प्रक्रिया है, जिसकी सहायता से राज्य सरकारे अपनी सदिग्ध शक्तियो का प्रयोग करते हुए एक-दूसरे के साथ अपने सम्बन्धो का सचालन करती हैं और मतभेदो पर विचार-विमर्श, उनका व्यवस्थापन तथा समाधान करती है।

2. विमर्श (Discussion)

इस विधि मे दोनों पक्षो को एक ऐसा मच प्रदान किया जाता है जहां

वे स्वतंत्र रूप से लिखित या मौखिक अपने दावे या शिकायतें प्रस्तुत कर सकते हैं तथा द्विपक्षीय कूटनीति के माध्यम से ऐसी स्थिति मे पहुचा जा सकता है जहां विवाद के समाधानार्थ कोई समझौता हो सके।

3. विवाचन (Arbitration)

विवाचन का उद्देश्य दो विरोधी पक्षो मे अविश्वास व अन्य रुकावटे दूर कर परस्पर एकता स्थापित करना है। विवाचन न्याय निर्णय है, इसमें समझौते का स्थान नहीं होता। प्रो० ओपनहीम के अनुसार—विवाचन का अर्थ है मतभेदो का समाधान कानूनी निर्णय द्वारा किया जाए। यह निर्णय दोनो पक्षो द्वारा निर्वाचित एक या अनेक पचो के न्यायाधिकरण द्वारा होता है जो अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय से भिन्न प्रकृति का है।

4. सामूहिक-सौदेबाजी (Collective Bargaining)

यह दो पक्षों के बीच विचार-विमर्श और बातचीत का एक ढग है जिसमे आपसी समझौते द्वारा किसी समस्या का द्विपक्षीय हल खोजा जाता है।

उपर्युक्त कूटनीतिक विधियो के अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कलह-शमन हेतु मत्रणा (Counselling) अनुनय (Persuation) आदि विधियो का भी प्रयोग किया जाता है।

सघर्ष के विभिन्न क्षेत्रो मे सघर्ष निराकरण हेतु प्रयुक्त कुछ सुझाव—

क्षेत्र	निराकरण हेतु सुझाव
1. वैयक्तिक	• व्यापक दृष्टिकोण • उपवास व प्रायश्चित • साक्षात् बातचीत को प्राथमिकता
2. प्रजातीय	• वैज्ञानिक जानकारी के आधार पर जातीय भेद-भाव दूर करे • शिक्षा-नीति मे गतिशील परिवर्तन • सयुक्त राष्ट्रसघ व एन०जी०ओ० के प्रयास
3. सामाजिक	• उच्चकोटि के लक्ष्यो के लिए सहकारी ढग पर कार्य • उन आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियो का उन्मूलन जिनके कारण

व्यापक चिन्ता व विद्वेष फैलते हैं।

- **बच्चे का सामाजीकरण–पूर्वाग्रहों मे न पालें।**

4. राजनैतिक
- **सह-अस्तित्व को प्रमुखता**
- **सम्बन्धों का पुनर्व्यस्थापन**
- **संधिया एव सहयोग।**

संघर्ष एवं संघर्ष निराकरण हेतु गांधीवादी दृष्टि

प्रो० गाल्टुंग ने सघर्ष व सघर्ष निराकरण हेतु गाधीवादी दृष्टि को इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

1. लक्ष्य व संघर्ष–

11. सघर्ष में कार्य करो।
- कार्य अभी करो।
- कार्य यहीं करो।
- अपने समूह के लिए कार्य करो।
- बिना पहचान के कार्य करो।
- परम्परा से हटकर कार्य करो।

12 सघर्ष को अच्छी तरह परिभाषित करे।
- स्वय के लक्ष्यों को स्पष्ट करे।
- प्रतिपक्षी के लक्ष्यो को समझने का प्रयत्न करे।
- सामान्य और विरोधी लक्ष्यो पर जोर दे।
- सघर्ष से सम्बन्धित वस्तुनिष्ठ तथ्यो को स्पष्ट करे।

13. संघर्ष के लिए विधेयात्मक दृष्टि रखें।
- सघर्ष के विधेयात्मक पक्ष पर बल दे।
- सघर्ष को प्रतिपक्षी से मिलने के अवसर के रूप मे देखे।
- सघर्ष को समाज रूपान्तरण के अवसर के रूप में देखे।
- **सघर्ष को स्वय के रूपान्तरण के अवसर के रूप में देखे।**

2. संघर्ष

21. संघर्ष में अहिंसक रूप से कार्य करें।

- अपने कार्यों से चोट व नुकसान न पहुचायें।
- अपने शब्दो से चोट व नुकसान न पहुचाये।
- अपने विचारों से चोट व नुकसान न पहुचाये।
- प्रतिपक्षी की सम्पत्ति का नुकसान न करें।
- कायरता की अपेक्षा हिंसा को प्राथमिकता दें।
- बुरे व्यक्ति के लिए भी अच्छा करे।

22. लक्ष्यो के अनुरूप कार्य करें।

- सृजनात्मक तत्त्वो का समावेश करे।
- खुले रूप से कार्य करे, गुप्त रूप से नहीं।
- सघर्ष के सही बिन्दु पर ध्यान केन्द्रित करे।

23. बुराई का सहयोग न करे।

- दोषयुक्त सरचना से असहयोग।
- बुरे कार्यो से असहयोग।
- बुराई का सहयोग करने वालो से असहयोग।

24 आत्म बलिदान का भाव रखे।

- दण्ड से न बचे।
- यदि आवश्यक हुआ तो मरने के लिए तैयार रहे।

25 एक ही दिशा में न सोचे।

- प्रतिद्वन्द्विता और प्रतिद्वन्द्वी मे भेद करे।
- व्यक्ति और उसके स्तर मे भेद करे।
- सम्पर्क बनाए रखे।
- विरोधी के स्तर का सम्मान करे।

3. सघर्ष निराकरण

31. सघर्ष का समाधान करे।

- सघर्ष को सदैव के लिए न रखे।
- प्रतिद्वन्द्वी के साथ वार्ता के अवसर ढूढे।

- विधेयात्मक सामाजिक-रूपान्तरण के अवसर खोजे।
- मानवीय रूपान्तरण के अवसर खोजे।

32. मूलभूत तत्त्वों पर जोर दें।

- मूलभूत तत्त्वो से व्यापार न करे।
- सहायक तत्त्वों के प्रति समझौते की इच्छा रखे।

33. स्वयं के प्रति भी शका करे।

- आप भी गलत हो सकते है
- अपनी गलतियो को हृदय से स्वीकार करे।

34. प्रतिद्वन्द्वी के प्रति अपने विचारों को उदार रखे

- प्रतिद्वन्द्वी की कमजोरियो का फायदा न उठाये।
- प्रतिद्वन्द्वी को स्वय से ज्यादा कठोर न माने।
- प्रतिद्वन्द्वी का विश्वास करें।

35. रूपान्तरण करें न कि बल प्रयोग।

- स्वय तथा प्रतिद्वन्द्वी को स्वीकृत समाधान ही खोजे।
- प्रतिद्वन्द्वी को न दबाये।
- प्रतिद्वन्द्वी को कारण मे विश्वास करने वाले के रूप मे बदले।

कलह शमन एवं आक्रामकता

मानवीय स्वभाव मुख्यत दो प्रकार का है—अन्तर्मुखी और बाह्यमुखी। मनोविज्ञान मे अन्तर्मुखी स्वभाव की दो विशेषताए बतलाई गई हैं—मौन व्यक्तित्व व आक्रामक व्यक्तित्व। न्यू वेबस्टर डिक्शनरी के अनुसार आक्रामकता से अभिप्राय ऐसे व्यक्तित्व से है जो दूसरे पर कारण-अकारण आक्रमण करे। यह आक्रमण शारीरिक या अन्य रूपो मे भी हो सकता है तथा व्यक्ति का स्वय का भय, असुरक्षा, हीन भावना या ऐसे ही अन्य निषेधात्मक भाव भी इसके कारण हो सकते हैं। आक्रामक व्यक्ति अपनी जटिलताओ या कुण्ठाओ को दबाने हेतु आक्रामकता को साधन के रूप मे प्रयोग करते है उस समय वे अपने अवचेतन-मन द्वारा निर्देशित होते हैं भले ही चेतना के स्तर पर उन्हे इसका ज्ञान न हो।

आक्रामकता के कारण

वे कारण या परिस्थितिया जो एक मनुष्य को आक्रामक प्रतिक्रिया करने को बाध्य करती हैं, निम्न हो सकती हैं—

1 कुण्ठा एव हानिकारक उद्दीपक
2 इतिहास या अतीत
3 सामाजिक कारण
4 मनुष्य का स्वभाव।

कुण्ठा एव हानिकारक उद्दीपक

विभिन्न प्रकार की कुण्ठाये या हानिकारक उद्दीपक आक्रामकता के मुख्य कारण हो सकते हैं। फ्रायड ने व्यक्ति मे एक ऐसी अचेतन शक्ति की परिकल्पना की है, जिसके कारण वह युद्ध का स्वागत करता है। फ्रायड का मत है—"निराशा के कारण मनुष्य ऐसे अवरुद्ध आक्रमण के लिए प्रेरित होता है तथा अभिव्यक्ति के लिए एक ऐसा मार्ग ढूढने का प्रयत्न करता है जो सामाजिक

दृष्टि से स्वीकृत हो और वह उसके अह को भी स्वीकार्य हो।"

हिमलबेट ने कुण्ठा को उत्पन्न करने वाली तीन मुख्य स्थितियां बतलाई हैं—

1. प्रतिकूल वातावरण द्वारा प्रस्तुत बाह्य बाधाए जो व्यक्ति को अपने लक्ष्य प्राप्ति से रोकती हो।

2. मनुष्य के पराह द्वारा प्रस्तुत आंतरिक बांधाए जो उसकी अस्वीकार्य प्रवृत्तियो की उन्मुक्त अभिव्यक्ति को रोकती है तथा

3 दो पारस्परिक विशिष्ट प्रवृत्तियो का एक साथ उत्प्रेरण, जहां पर एक व्यक्ति की सतुष्टि से दूसरे व्यक्ति के तात्कालिक सतोष मे बाधा पड़ती है।

प्रत्येक प्रकार की कुण्ठा आक्रामकता का कारण नहीं बनती। निषेधात्मक भावों के परिमाण के आधार पर ही आक्रामकता का परिमाण निर्धारित होता है। किस लक्ष्य के अवरुद्ध होने पर उत्पन्न हुई कुण्ठा आक्रामकता का कारण बनती है इस हेतु लक्ष्य तीन प्रकार के हो सकते है—

1 एक ऐसा लक्ष्य जो व्यक्ति के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण न हो तथा जिसके प्राप्त न होने से उसके व्यक्तित्व को गभीर हानि न पहुचे।

2 दूसरा ऐसा लक्ष्य, जिसकी अप्राप्ति से उसके व्यक्तित्व की अखण्डता को चुनौती, उसकी सुरक्षा भावना पर आघात तथा उसके अह पर चोट लगे, तथा

3 तीसरा ऐसा लक्ष्य जिसकी प्राप्ति मे निरन्तर बाधाए आती रहे तथा इसके कारण से प्राप्त हुई असफलता, सघर्ष व्यक्ति को निरन्तर कुण्ठित करता रहे।

प्रथम प्रकार के लक्ष्य अवरोध से उत्पन्न हुई कुण्ठा आक्रामकता का कारण नहीं बनती। दूसरे प्रकार के अवरोध से उत्पन्न हुई कुण्ठा आक्रामकता का कारण हो सकती है जबकि तीसरे प्रकार के लक्ष्य के अवरोध से उत्पन्न हुई कुण्ठा निश्चित ही आक्रामकता का कारण बनती है।

हानिकारक उद्दीपक से अभिप्राय उस परिस्थिति से है, जिसमे एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति पर प्रत्यक्ष रूप से आक्रमण करके उसे पुन आक्रमण के लिए उकसाता है। यदि कोई व्यक्ति किसी पर आक्रमण करता है तो प्रतिपक्षी के पास दो ही विकल्प होते हैं या तो वह उस स्थान को छोड़ दे या प्रतिक्रिया स्वरूप आक्रमण करे।

उपर्युक्त दोनो कारणो मे हानिकारक उद्दीपक आक्रामक होने का ज्यादा जिम्मेदार है।

इतिहास या अतीत

अन्य प्रतिक्रियाओ की भाति आक्रामकता की भी एक विशेष प्रक्रिया होती है। निरन्तर आक्रामक भावना से व्यक्ति को आक्रामकता की आदत पड़ जाती है जिससे व्यक्ति कुण्ठा या हानिकारक उद्दीपक के अभाव में भी आक्रामक बने रह सकता है। उदाहरणार्थ—आक्रामकता से यदि व्यक्ति अतीत मे निरन्तर लाभान्वित होता रहा है तथा उसके विकास मे भी आक्रामकता किसी प्रकार सहायक रही है तो वह व्यक्ति आक्रामकता का निरन्तर व्यवहार करता रहेगा तथा उसकी एक विशेष प्रकार की आदत निर्मित हो जायेगी। आक्रामकता की ओर उसका झुकाव इतना बढ जायेगा कि वह शान्तपूर्ण समाधान की सम्भावना होते हुए भी उसका उपयोग नहीं करना चाहेगा एव उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व ही आक्रामक हो जायेगा।

सामाजिक कारण

सामाजिक आलम्बन या सहयोग एक व्यक्ति के व्यवहार पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालता है। व्यक्ति समूह मे रहता है इसलिये उस समूह का प्रभाव व्यक्ति के व्यवहार, क्रिया आदि पर पडता है। मानव-शास्त्रियो ने विभिन्न अनुसन्धानो द्वारा विभिन्न प्रकार के समूहो का व्यक्ति पर पडने वाले प्रभावो का अध्ययन किया है। एक परिवार मे रहने वाले बच्चे के व्यक्तित्व-निर्माण की प्रक्रिया उसके माता-पिता के व्यक्तित्व से प्रभावित होती है। यदि उस पारिवारिक समूह मे आक्रामकता व्याप्त है तो बच्चे के व्यवहार मे निश्चित रूप से किसी न किसी अश मे आक्रामकता आ ही जायेगी। परन्तु यदि समूह मे आक्रामकता का अभाव है तो प्राय यह देखा गया है कि बच्चे का झुकाव आक्रामकता की ओर कम ही होगा।

मनुष्य का स्वभाव

स्वभाव का विश्लेषण उस व्यवहार के द्वारा किया जा सकता है जो कि मनुष्य के जीवन के पूर्वार्द्ध मे घटित होता है तथा उस व्यवहार को निरन्तर प्रयोग मे लाने के कारण वह उसकी आवश्यक आदत बन जाती है एव कालान्तर मे वह उसका स्वभाव ही हो जाता है। स्वभाव न केवल आक्रामक व्यवहार को प्रभावित करता है अपितु विभिन्न प्रकार के अन्य व्यवहारो को भी प्रभावित

करता है जो मनुष्य के जीवन में आवश्यक है। स्वभाव मनुष्य की सक्रियता के स्तर, प्रतिक्रिया की तीव्रता, स्वतन्त्रता आदि को भी प्रभावित करता है। मनुष्य का स्वभाव यदि परिपक्व है और वह कारणों पर गम्भीर चिन्तन कर सकता है तो वह किसी प्रतिक्रिया से पूर्व उन कारणों को खोज सकता है जो आक्रामक होने मे सहयोग देते हैं। एक परिपक्व मस्तिष्क विचारपूर्वक प्रतिक्रिया करता है जो कि आक्रामकता की तीव्रता को प्रभावित कर कम कर देता है।

सक्रियता के स्तर से अभिप्राय उस ऊर्जा से है जो व्यक्ति अपने प्रतिदिन के व्यवहार हेतु प्रयोग में लाता है। मनोवैज्ञानिकों द्वारा यह निष्कर्ष निकाला गया है कि अधिक सक्रियता स्तर से क्रोधात्मक भावों को अधिक उद्दीपन मिलता है जो आक्रामकता का कारण बनता है। कम सक्रियता स्तर के व्यक्ति को हानिकारक या क्रोधात्मक उद्दीपन नहीं मिलता, परिणामत ऐसा व्यक्ति आक्रामक नहीं बनता।

प्रतिक्रिया की तीव्रता विभिन्न प्रकार के मनुष्यों में विभिन्न प्रकार की होती है। जितनी तीव्र प्रतिक्रिया होगी उतनी ही अधिक आक्रामकता की सम्भावना होगी। चूकि प्रतिक्रिया की तीव्रता उसी रूप में प्रभावित करती है, अत: तीव्र प्रतिक्रिया वाले व्यक्ति अधिक आक्रामक होते हैं तथा जिनकी प्रतिक्रिया का स्तर तीव्र नहीं होता, तुलनात्मक रूप से वे कम आक्रामक होते हैं।

स्वभाव मे स्वाधीनता का अश व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करता है। स्वाधीनता का अर्थ स्वावलम्बन, आत्मनिर्भरता तथा सामूहिक दबाव के निषेध की अभिरूचि से है। यह देखा गया है कि अधिक स्वाधीन विचारधारा वाले व्यक्ति में आक्रामक प्रवृत्ति पाये जाने की अधिक सम्भावना होती है तथा दूसरो पर निर्भर रहे या आशिक रूप से पराधीन रहे व्यक्ति में आक्रामक प्रवृत्ति रहने की कम सम्भावना रहती है।

अन्त:स्रावी ग्रंथि तन्त्र और आक्रामकता

चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में किये गये अनुसन्धानों से यह ज्ञात हुआ है कि निषेधात्मक उद्दीपन हाईपोथैलेमस को उद्दीप्त करता है। यहां से निश्रित रासायनिक स्राव अनुकम्पी नाड़ी संस्थान तथा एड्रीनल ग्रंथि को प्रभावित करते हैं तथा प्रतिक्रिया में निश्रित अन्त स्रावी स्रावों से हृदय की धड़कन तीव्र हो जाती है, रक्तचाप बढ़ जाता है तथा रक्त का प्रवाह मांस-पेशियों की तरफ होता है और व्यक्ति का शरीर आक्रमण के लिए तैयार हो जाता है। यदि प्रतिदिन

व्यक्ति को इसी प्रकार की परिस्थितियों का सामना करना पड जाये तो आक्रामकता उसका स्वभाव बन जाती है।

समूह आक्रामकता

समूह आक्रामकता का कोई सन्तोषजनक विश्लेषण मनोविज्ञान या समाजविज्ञानो में नहीं मिलता। समूह मे हिंसा के प्रमुख उदाहरणों में प्रतिस्पर्धा, नैतिक मूल्य आदि कारण पाये गये हैं। समूह की आक्रामकता का एक प्रमुख कारण भावात्मक तनाव भी है तथा कुण्ठा एव विशेषकर पूर्वाग्रहो की अह भूमिका रही है। मूलत यदि देखा जाये तो समूह आक्रामकता मे पूर्वाग्रह ही प्रमुख कारण है। इन पूर्वाग्रहो के कारण एक समूह अपनी ही जीवन शैली को अच्छा बतलाता है, अपने ही विचारो को अच्छा मानता है और अपनी ही मान्यताओं को जन-उपयोगी मानता है। परिणामस्वरूप समूह की आक्रामकता को बढावा मिलता है। पूर्वाग्रहो के कई प्रकार हो सकते हैं, जैसे-अपने समूह के पूर्वाग्रह, राष्ट्रीय पूर्वाग्रह, वैचारिक, जातीय और साम्प्रदायिक पूर्वाग्रह आदि। ये पूर्वाग्रह अपने-अपने समूहो में आक्रामकता के लिए जिम्मेदार है।

आक्रामकता पर नियन्त्रण

मानव शास्त्रियो द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि व्यक्ति का शारीरिक सस्थान, मानसिक योग्यता, भावनाए, आकृति एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। इसलिये मनुष्य के लिए आक्रामक बनने मे इनके हानिकारक तत्त्व सहयोगी बनते हैं। समाज मे व्याप्त विषमताए आदि मे भी वह उद्दीपन व्याप्त है जो आक्रामकता मे सहायक है। प्रो० हम्बर्ग ने लिखा है—"यदि आक्रामकता को प्रोत्साहन मिलेगा, उद्दीपन मिलेगा तो वह प्रकट हो जायेगी। सघर्ष, तनाव व हिंसा आदि को सामाजिक मान्यता मिलती है तो मनुष्य उसे करके ही सन्तुष्ट होना चाहता है। इसलिये यदि आक्रामकता या हिसा को नियन्त्रित करना है तो हमे इस प्रकार की सस्कृति अपनानी पडेगी जो कि हमें आक्रामकता के विरोध मे शिक्षित करे तथा उन परिस्थितियो को दूर करने मे सहायता दे जो मनुष्य के आवश्यक कार्यों, समस्याओ आदि को सुलझाने मे बाधा डालती है।" और हमे इस प्रकार की जीवन शैली का भी निर्माण करना पडेगा जो व्यक्ति को पूर्वाग्रहों मे न पालकर विधेयात्मक भाव और चिन्तन देती है। ये प्रयास हमे समाज की लघुत्तर इकाईयों से ही प्रारम्भ करना होगा।

कलह-शमन और अनेकान्त

यह पृथ्वी कभी भी धर्म व दर्शन से रिक्त नहीं रही है। भारतवर्ष भी इसका अपवाद नहीं है। भारत मे जैन, बौद्ध, वैदिक आदि विविध धर्मों का अस्तित्व रहा है। इन धर्मों के अपने-अपने विशिष्ट सिद्धान्त रहे हैं। अनेकान्त—जैन दर्शन का एक विशेष सिद्धान्त है। इससे ही बौद्धिक अहिंसा का सूत्रपात हुआ है, जो जैनों की अहिंसा-दर्शन मे विशेष देन है। इसी देन के कारण अहिंसा जैन दर्शन से जुड़ी हुई है।

अनेकान्त की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भगवान महावीर के पूर्व भारत-भूमि पर वैचारिक-सघर्ष एव दार्शनिक विवाद अपनी चरम सीमा पर थे। जैन आगमो के अनुसार उस समय 363 मत प्रचलित थे। इन 363 दार्शनिक सम्प्रदायों को जैन आगमो मे चार वर्गों मे विभाजित किया गया था—

1. **क्रियावादी**—जो आत्मा को पुण्य-पाप आदि का कर्ता-भोक्ता मानते थे।

2. **अक्रियावादी**—जो आत्मा को अकर्ता मानते थे।

3. **विनयवादी**—जो आचार-नियमो पर बल देते थे।

4. **अज्ञानवादी**—इनके अनुसार ज्ञान से विवाद उत्पन्न होते हैं, इसलिए अज्ञान ही परम श्रेय है।

वैचारिक आग्रह और मतान्धता के इस युग में बुद्ध और महावीर दो महापुरुष हुए। बुद्ध ने विवाद व मतान्धता से ऊपर उठने के लिए विवाद परांगमुखता को अपनाया। किन्तु इससे मानवीय जिज्ञासा का समाधान नहीं हो पाया। व्यक्ति—दार्शनिक विचारो की इस सकुलता में सत्य को देखना चाहता था। वह जानना चाहता था कि इन विविध मतवादों मे सत्य कहा है? ऐसी परिस्थिति में महावीर विरोध-समन्वय की एक विधायक दृष्टि लेकर आये और उन्होंने कहा—आग्रह-मताग्धता या एकान्त दृष्टि ही गलत दृष्टि है।

महावीर ने कहा—एकान्त दृष्टि और आग्रह ही सत्य का बाधक तत्त्व है। सम्पूर्ण सत्य का ज्ञान अनाग्रह से ही हो सकता है। दूसरों के सत्य को झुठलाकर सत्य को नहीं पाया जा सकता। सत्य विवाद मे नहीं, विवाद-समन्वय मे प्रकट होता है।

अनेकान्त की दार्शनिक पृष्ठभूमि

पूर्ण सत्य जाना जा सकता है, पर कहा नहीं जा सकता। क्योकि शब्दों की इतनी सामर्थ्य नहीं है कि वह एक साथ एक समय मे पूर्ण सत्य को कह सके। इसलिए अपूर्ण साधन से पूर्णता को जानने के सभी प्रयास आशिक सत्य से आगे नहीं बढ़ पाते और जब आंशिक सत्य को पूर्ण सत्य मान लिया जाता है तब विवाद एव वैचारिक सघर्ष जन्म ले लेते हैं।

वस्तुत हमारी ऐन्द्रिक क्षमता, तर्क-बुद्धि, विचार-क्षमता, वाणी और भाषा इतनी अपूर्ण है कि वे सम्पूर्ण सत्य की अभिव्यक्ति में सक्षम नहीं हैं। वह केवल सत्य के एक अश को ही कह सकती है। इतना ही नहीं वस्तु सत्य मे परस्पर विरोधी गुण भी एक साथ रहते हैं। ऐसी स्थिति मे दो भिन्न दृष्टियो मे परस्पर विरोधी तथ्य भी एक साथ सत्य हो सकते हैं। जो वस्तु एक है वह अनेक भी है। जो वस्तु सत् है वह असत् भी है। वस्तु नित्य भी है और अनित्य भी।

अनेकान्त का एक सूत्र है—सहप्रतिपक्ष। प्रत्येक पदार्थ विरोधी युगलो का सकुल है। इसलिए अनेकान्त का मूल आधार है—विरोधी के अस्तित्व की स्वीकृति, प्रतिपक्ष की स्वीकृति। अनेकान्त ऐकान्तिक या आग्रह-बुद्धि का निरसन कर अनाग्रही या अनेकातिक-दृष्टि को प्रकट करता है। एकान्त मिथ्यादृष्टि के कारण सत्य के एक अश को हम पूर्ण सत्य मान लेते हैं। जिससे एक मत का दूसरे मत के साथ विरोध हो जाता है। अनेकान्त इन विरोधों का परिहार करके उनका समन्वय करता है।

वर्तमान युग में अनेकान्त की आवश्यकता

वर्तमान युग सापेक्षवाद, समन्वय, सह-अस्तित्व आदि से परिचित है। पर इनके पीछे जो सिद्धान्त है उसकी जानकारी सामान्यतया लोगो को नहीं है। इन विचारों के पीछे जो सिद्धान्त है वह है—अनेकान्त। एक मनुष्य क्या सोच रहा है, क्यों, कहा और किस अवस्था में सोच रहा है—इसका निर्णय किये बिना दूसरे के चिन्तन और प्रतिपादन के साथ न्याय नहीं किया जा सकता।

वस्तु विराट् व अनन्तधर्मात्मक है। पर शब्दो की अपनी सीमा है। एक

शब्द एक समय में एक ही सत्य को बता सकता है। इसलिए इस व्यक्त सत्य के अलावा अव्यक्त सत्य जिसे कहा नहीं गया है, उसका भी अस्तित्व है। स्यात् शब्द यह बतलाता है कि सत्यांश अभिव्यक्ति को पूर्ण मत समझो। इस सापेक्ष दृष्टि के आधार पर ही हमारे ज्ञान मे विरोध की छाया मिट सकती है।

युग की मांग अहिंसा का विकास भी अनेकान्तवादी दृष्टि के आधार पर ही हुआ है। विचारो की विषमता हिंसा का कारण है। अनेकांत का कहना है—सभी विचार परस्पर सापेक्ष हैं, इसलिए उनमे समन्वय संभव है।

उपर्युक्त आधारो पर आज अनेकान्त की आवश्यकता को समझा जा सकता है फिर भी विस्तृत दृष्टि हेतु अलग-अलग क्षेत्रो मे इसके प्रयोग निम्न प्रकार से हो सकते हैं —

पारिवारिक जीवन मे अनेकान्त दृष्टि

पारिवारिक जीवन मे सघर्ष के अनेक कारण होते है। सदस्यो की वैचारिक भिन्नता जीवन स्तर, सदस्यो के पारस्परिक सबध, आजीविका आदि पारिवारिक सदस्यो के बीच तनाव या कलह का कारण बनते है। पर वर्तमान मे पारिवारिक जीवन मे सामान्यत सघर्ष के दो केन्द्र हैं—पिता-पुत्र तथा सास-बहू। इनमे विवाद का मूल कारण दोनो का दृष्टिभेद है। पिता जिस परिवेश मे बडा हुआ है उन्हीं सस्कारो मे पुत्र को ढालना चाहता है। जो मान्यताए पिता की हैं, उन्हीं मान्यताओ को पुत्र द्वारा मनवाना चाहता है। यही स्थिति सास-बहू की है। सास यह अपेक्षा करती है कि बहू ऐसा जीवन जिये जैसा उसने स्वय जीया था। पर बहू युग के अनुरूप व अपने मातृ पक्ष के सस्कारो से प्रभावित जीवन जीना चाहती है। पीहर की स्वतत्रता के स्थान पर ससुराल मे मर्यादित जीवन जीना पडता है। यही सब परस्पर विवाद का कारण बनते हैं। जब तक एक-दूसरे के प्रति सहिष्णु दृष्टिकोण व दूसरे की स्थिति को समझने का प्रयास नहीं किया जाएगा तब तक सघर्ष समाप्त नहीं हो सकता।

अनेकान्त कहता है—केवल अपने ही दृष्टिकोण के प्रति आग्रह न रखें, दूसरे के विचारो के प्रति भी सहिष्णु बने। इस हेतु सहिष्णुता का विकास अपेक्षित है। हम स्वय के भावात्मक सवेगो पर नियन्त्रण रखें, दूसरे के विचारो को समझने की कोशिश करे, अह व गर्व की भावना को महत्त्व न दें।

सामाजिक क्षेत्र में अनेकान्त का प्रयोग

समाज अनेक जातियों व अनेक तरह के लोगों का समूह है। प्राचीन काल की वर्णव्यवस्था ने समाज मे उच्च और निम्न वर्गों को जन्म दे दिया। अनेकान्त के अनुसार वर्ण जन्म के आधार पर नहीं, कर्म के आधार पर हो। कर्मणा जातिवाद मानवीय एकता का आधार है। परिवर्तनशील जाति मनुष्य-मनुष्य के बीच ऊच-नीच और छुआछूत की दीवारे नहीं खडी कर सकतीं।

कोई भी सगठन समन्वय के बिना सभव नहीं है। समन्वय का दृष्टिकोण ही सह-अस्तित्व की बात को बल देता है और सापेक्षता सह-अस्तित्व को सभव बनाती है। निरपेक्ष दृष्टिकोण से सामाजिकता नहीं हो सकती क्योकि निरपेक्षदृष्टि कहती है—पडौसी मरे या जीए, भूखा रहे या न रहे मुझे क्या? जबकि सामाजिक दृष्टि कहती है—परस्परोपग्रहो जीवानाम्।

साम्प्रदायिक वैमनस्य और अनेकान्त

अनेकान्त का प्रयोग धार्मिक क्षेत्र मे धार्मिक सहिष्णुता व सर्व-धर्म समभाव के लिए किया जा सकता है।

विश्व के विभिन्न धर्माचार्यो ने अपने युग की तात्कालिक परिस्थितियो से प्रभावित होकर साधना के बाह्य नियमो का निर्धारण किया। उनके मतावलबियो ने अपने धर्माचार्यों के प्रति ममता व आग्रह के कारण अपने ही धर्म या साधना पद्धति को एकमात्र व अतिम सत्य मानने को बाध्य किया। फलस्वरूप विभिन्न सप्रदायो के बीच वैमनस्य प्रारम्भ हुआ। यदि हम यह समझ ले कि कोई भी तत्त्व सब सम्प्रदायो मे पूर्ण नहीं है। पूर्णता मर्यादित है। निरपेक्षता और पूर्णता हमारी कल्पना है, यथार्थ नहीं। इसलिए सापेक्ष दृष्टिकोण साम्प्रदायिक कलह को दूर करने मे सक्षम है। सर्व-धर्म सद्भाव के लिए अनेकान्त के पाच सूत्र—

1 मण्डनात्मक नीति अपनाई जाय, दूसरो पर आक्षेप न हो।

2 दूसरो के विचारो के प्रति सहिष्णुता।

3 दूसरे सम्प्रदाय व उनके अनुयायियो के प्रति घृणा के भाव न हो।

4 कोई सम्प्रदाय परिवर्तन करे तो उसके साथ अवाछनीय व्यवहार न किया जाय।

5. धर्म के मौलिक तथ्यों जैसे अहिंसा आदि के प्रचार के लिए सामूहिक प्रयत्न किये जाय।

राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के संदर्भ में अनेकान्त के प्रयोग

वर्तमान में राजनैतिक जीवन भी वैचारिक संकीर्णता से परिपूर्ण है। पूजीवाद–समाजवाद आदि अनेक राजनैतिक विचारधाराएं तथा राजतंत्र–प्रजातत्र आदि अनेक शासन प्रणालिया वर्तमान में प्रचलित हैं। ये विरोधी विचार एव व्यवस्थाए एक–दूसरे को समाप्त करने के लिए प्रयत्नशील हैं। इतना ही नहीं प्रत्येक खेमे के राष्ट्र अपना प्रभाव क्षेत्र बढाने हेतु भी तत्पर हैं।

विश्व में अनेक राष्ट्र, उन सबकी अलग–अलग विचारधाराए फिर उनमे सघर्ष नहीं हो, यह तभी संभव है जब हम सह–अस्तित्व के सिद्धान्त को स्वीकार करे। सह–अस्तित्व अर्थात् विरोधी व्यक्तियो, विरोधी राष्ट्रो, विरोधी धर्मों का सह–अस्तित्व हो सकता है। सयुक्त राष्ट्र सघ इसका सर्वोपरि उदाहरण है। भिन्नता से लडाई आखिर कब तक करेगे। भाषा ने, वर्गों ने, सीमाओ ने, रगो ने न जाने मनुष्य जाति के कितने टुकडे किये हैं और यही होता रहा तो युद्ध मानवजाति को नाश कर देगा। यदि मनुष्य को जीना है तो उसका मार्ग है सह–अस्तित्व।

आज का समय हमे बता रहा है कि हम बहुसख्यको के लिए अल्पसख्यको का बडे राष्ट्रो के लिए छोटो के हितो का बलिदान नहीं कर सकते। सापेक्ष नीति कहती है—किसी के लिए किसी का अनिष्ट नहीं किया जा सकता। प्रभुसत्ता की दृष्टि से सभी राष्ट्र स्वतत्र हैं, जब सामर्थ्य की भिन्नता हो सकती है। इस भिन्नता या वैषम्य के आधार पर दूसरो को मिटाने की बात गलत है। शीत युद्ध इसी के परिणाम हैं। हम सापेक्षता और सह–अस्तित्व को स्वीकारे। आज यह माना जाने लगा है कि यदि गरीब और अविकसित राष्ट्रो का विकास नहीं कर पाये तो समृद्ध और विकसित राष्ट्र बहुत लम्बे समय तक अपने विकास को यथावत् नहीं रख पायेगे । इसलिए सभी राष्ट्र, सभी व्यवस्थाए, सभी विचारधाराए विश्व की विराट् व्यवस्था के अग हैं। एक साथ रह सकते हैं। अनेकात दृष्टि कहती है—

- सभी अपना दृष्टिकोण सम्यक् बनाए।
- समस्या सुलझाने हेतु एक साथ बैठें।
- एक दूसरे को समझने का प्रयत्न करे।

अतएव अनेकान्त आज विभिन्न क्षेत्रों की युगीन समस्याओ को सुलझाने मे समर्थ है। आवश्यकता है इन क्षेत्रो मे अनेकान्त के प्रयोग की। समन्वय, सहिष्णुता, सह–अस्तित्व, सापेक्षता आदि दृष्टिया जागतिक समस्याओ का निदान प्रस्तुत करती हैं और आज विश्व–व्यवस्था का झुकाव भी इन्हीं सिद्धान्तो की ओर है। सापेक्षता और सह–अस्तित्व के आधार पर ही परमाणविक युग में मानवता त्राण पा सकती है और विश्व शाति की कल्पना साकार हो सकती है।

आवश्यक है विचारों व क्रियाओं में सापेक्ष दृष्टिकोण

प्रत्येक वस्तु अनेक विरोधी धर्मों का युगल है। हम अखण्ड वस्तु को जान तो सकते हैं पर उससे हमारा व्यवहार नहीं चल सकता। हम जब वस्तु स्वरूप के बारे में कहते हैं तो वस्तु स्वरूप के प्रत्येक उपयोग के पीछे हमारी अपेक्षा जुडी होती है। अपेक्षा न जुडी हो तो प्रत्येक वचन व प्रत्येक व्यवहार परस्पर विरोधी हो जाएगा। अपेक्षा दृष्टि से वस्तु एक या अनेक नहीं अपितु एक और अनेक का समन्वय है। वस्तु केवल नित्य या अनित्य नहीं है वरन् नित्यता और अनित्यता का समन्वय है। वस्तु केवल भिन्न या अभिन्न नहीं है अपितु भिन्न और अभिन्न का समन्वय है। यदि इस यथार्थता को समझ लिया जाए तो परस्पर के विरोध आसानी से सुलझाये जा सकते हैं।

अहिंसा के विकास मे सापेक्षता का योगदान

हिंसा की जड विचारो का विरोध है। वस्तु के जितने पहलू हैं उतने ही सत्य है उतने ही उन सत्यो को कहने के तरीके हैं और जितने कहने के तरीके है उतने ही मतवाद हैं। मतवादों का ऐकान्तिक दृष्टिकोण बिवादो को जन्म देता है और विवाद हिंसा को। जबकि मतवादों में अनेकातिक दृष्टिकोण या सापेक्ष दृष्टिकोण समन्वय को जन्म देता है और समन्वय अहिंसा को।

एक वक्ता जो शब्द कहता है, वह शब्द उसने कब, कहां और किन परिस्थितियो में कहा है, उसका क्या उद्देश्य है, किस साध्य की प्राप्ति के लिए वह ऐसा कह रहा है, आदि–आदि बिन्दुओं पर जब तक ध्यान नहीं दिया जाता किसी भी व्यक्ति के विचारो के प्रति न्याय नहीं हो सकता। इसलिए सापेक्षवाद कहता है—प्रत्येक धर्म को अपेक्षा के साथ ग्रहण करो क्योंकि सत्य सापेक्ष है। स्वय के साथ दूसरो को भी समझने की कोशिश करो। यही बौद्धिक अहिंसा है जो सापेक्ष दृष्टि से ही फलित होती है।

निरपेक्ष दृष्टिकोण—हिंसा का कारण

ऐकान्तिक आग्रह या निरपेक्ष दृष्टिकोण हिंसा का मूल है। यदि हम यह

कहें कि व्यक्ति समुदाय से सर्वथा भिन्न है तो यह वस्तुस्थिति का तिरस्कार होगा तथा पार्थक्यवादी नीति होगी। यदि हम यह कहे कि समुदाय ही सत्य है तो यह व्यक्ति का तिरस्कार होगा और ऐकातिक सामुदायिक नीति होगी। यदि हम कहें कि व्यक्ति ही सत्य है तो सामुदायिकता का तिरस्कार होगा और ऐकातिक व्यक्तिवादी नीति होगी। यदि हम कहे कि वर्तमान ही सत्य है तो एकता का तिरस्कार होगा और ऐकातिक परिवर्तनवादी नीति होगी। यदि हम लिगभेद और उत्पत्ति भेद को ही सत्य मानें तो यह एकता का तिरस्कार होगा।

इस प्रकार निरपेक्ष या ऐकातिक दृष्टिकोण सदैव किसी न किसी का तिरस्कार करेगा जो अन्तत हिंसा को जन्म देगा।

सापेक्षता के सूत्र–

(क) कोई भी वस्तु या व्यवस्था सापेक्षता की मर्यादा से बाहर नहीं है। प्रत्येक वस्तु व व्यवस्था सापेक्ष होती है पूर्ण नहीं।

(ख) दो विरोधी गुण एक वस्तु मे एक साथ रह सकते हैं।

(ग) सभी दृष्टिकोण परस्पर विरोधी नहीं है पर सभी दृष्टिकोण सापेक्ष हैं, एक दूसरे के पूरक हैं।

(घ) एकान्त विरोध या एकान्त अविरोध से पदार्थ व्यवस्था सभव नहीं है। विरोध और अविरोध के समन्वय से ही व्यवस्था सभव हो सकती है।

(ङ) जितने एकान्त या निरपेक्षवाद हैं उनमे दोष भरे पडे हैं तथा परस्पर विनाश करने वाले हैं। अनाक्रमण, अहस्तक्षेप, स्वमर्यादा का अनतिक्रमण सापेक्षता ये सामजस्य के सिद्धान्त हैं जो निरपेक्ष या आग्रही दृष्टि मे सापेक्षता और अनाग्रह (समन्वय) को खोजते है।

(च) जितने वचन हैं, उतने ही सत्य हैं। प्रत्येक दृष्टि विशाल ज्ञान सागर का अश है अर्थात् प्रत्येक दृष्टि अपनी–अपनी सीमा मे सत्य है।

सापेक्षता के प्रयोग–

1. अध्यात्म जगत् में

अध्यात्म जगत् मे कोई भी व्यक्ति किसी भी जीव के प्रति निरपेक्ष नहीं हो सकता। निरपेक्ष होने का अर्थ है जीवो के प्रति क्रूर होना। अध्यात्म जगत् मे सापेक्षदृष्टि कहती है सभी प्राणियों की अपेक्षा करो अर्थात् उनके महत्त्व को समझो। उनकी हिंसा मत करो, उनकी हिंसा मत करवाओ और दूसरा यदि उनकी हिंसा करता है तो उसका अनुमोदन भी मत करो।

2. सामाजिक क्षेत्र में

समाज में हमें वैषम्य देखने को मिलता है क्योंकि समत्व का विकास नहीं है। समत्व दृष्टि कहती है—जिस तरह तुम्हें दुःख अप्रिय है उसी तरह सभी प्राणियों को दु.ख अप्रिय है। बाहरी आवरणों का भेद होने पर भी सब जीवों का भीतरी जगत् एक जैसा है। सभी जीवों में आत्मा समान है। सभी जीवों मे सामर्थ्य की दृष्टि से ज्ञान समान है। उसका विकास भिन्न-भिन्न है। सामर्थ्य की दृष्टि से शक्ति सभी जीवों में समान है पर उसका विकास भिन्न-भिन्न है। इसलिए किसी भी जीव को उच्च या निम्न कहने का अधिकार हमें नहीं है।

व्यक्ति और समाज मे कभी व्यक्ति को महत्त्व दिया जाता है तो कभी समाज को। यदि अपेक्षा को समझ लिया जाए तो यह भी स्पष्ट हो जाएगा कि कब व्यक्ति को अधिक महत्त्व दिया जाएगा और कब समाज को। और यदि व्यक्ति या समाज के प्रति ऐकान्तिक आग्रह ही रहेगा तो वह खिचाव पैदा करेगा।

समाज का महत्त्वपूर्ण सूत्र है—"परस्परोपग्रहो जीवानाम्" जो अनेकात द्वारा ही फलित होता है। समाज का हर व्यक्ति एक दूसरे को उपकृत करे। ऐसा सापेक्ष दृष्टिकोण न शोषण को जन्म देगा, न अपराध को और न हिंसा को। निरपेक्ष दृष्टि कहती है—कोई व्यक्ति मरे या जीए, भूखा रहे या न रहे इससे दूसरे व्यक्ति को कोई मतलब नहीं होगा। पर परस्परोपग्रहो जीवानाम् के सिद्धान्त पर चलने वाला व्यक्ति पडौसी की परेशानी से भी परेशान होगा।

3. आर्थिक क्षेत्र में

प्रत्येक व्यक्ति मे उपार्जन क्षमता है। यह क्षमता हर व्यक्ति की समान नहीं है। इस असमान क्षमता के आधार पर कोई धनी है, कोई गरीब है और उनमे वर्ग भेद है। वर्गभेद समाप्ति के लिए समाजवाद का विकास हुआ पर उसमें दायित्व का बोध नहीं। पूजीवाद मे वैयक्तिकता का विकास है पर उसमे स्वार्थ व शोषण वृत्ति पनपती है। इन सब समस्याओं का समाधान है—स्वामित्व को सापेक्ष बनाए। भोग के लिए इच्छा परिमाण करे अर्थात् स्वामित्व का सीमाकन करे। सापेक्ष स्वामित्व दोहरी समस्या का समाधान है। एक तो इसमे शोषण वृत्ति बद रहेगी क्योकि उचित सीमा के बाद सपत्ति पर उसका अधिकार नहीं होगा एव उपार्जन की स्वतत्रता के कारण व्यक्तिगत प्रेरणा भी रहेगी।

4. साम्प्रदायिक कलह के लिए

धार्मिक क्षेत्र सम्प्रदायो की विविधता के कारण असामजस्य की रगभूमि रहे हैं। सापेक्षवाद कहता है—सभी धर्मों में सत्यांश है। समाज व्यवहार या दैविक व्यवहार की दृष्टि से वैदिक धर्म ठीक है। अहिंसा या मोक्षमार्ग की दृष्टि से जैन धर्म ठीक है। श्रुतिमाधुर्य व करुणा की दृष्टि से बौद्ध धर्म ठीक

है। धर्म उपासना पद्धति या योग की दृष्टि से शैव धर्म ठीक है। निरपेक्ष पूर्णता हमारी कल्पना है। पूर्णता सदैव मर्यादित होती है।

सर्व-धर्म सद्भाव की दृष्टि से सापेक्षवाद पांच सूत्र देता है—

(१) अपनी मान्यता का प्रतिपादन करें पर दूसरों पर आपेक्ष न करें।
(२) दूसरे के विचारों के प्रति सहिष्णुता रखें।
(३) दूसरे समुदाय या अनुयायियों के प्रति घृणा या तिरस्कार न हो।
(४) सम्प्रदाय परिवर्तन करने वालो के साथ अवाछनीय व्यवहार न हो।
(५) धर्म के मौलिक तत्त्वों अहिंसा आदि को विश्वव्यापी बनाने का सामूहिक प्रयत्न हो।

5. अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में

परिवार, जाति, समाज, राष्ट्र, विश्व ये सभी क्रमिक सगठन हैं। सगठन का अर्थ है—सापेक्षता। बिना सापेक्ष दृष्टिकोण के कोई भी सगठन अधिक दिनो तक नहीं चल सकता। उदाहरणत एक राष्ट्र दूसरे पर प्रभुत्व जमाना चाहता है—परिणाम होगा—सघर्ष, अशाति। वैयक्तिक, जातीय, सामाजिक, राष्ट्रीय व अतर्राष्ट्रीय सापेक्षता समता, सामीप्य, व्यवस्था, स्नेह, शक्तिवर्द्धन, मैत्री व शाति को जन्म देगी।

निरपेक्ष दृष्टिकोण अतर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे सदैव विषमता पैदा करते आये हैं। अधिकतम व्यक्तियो के लिए अधिकतम सुख के निरपेक्ष दृष्टिकोण ने ही हिटलर को यहूदियों पर अत्याचार का अवसर दिया। बहुसख्यकों के लिए अल्पसख्यको तथा बड़ो के लिए छोटो का बलिदान भी निरपेक्ष दृष्टि का ही फल है। सापेक्ष नीति कहती है—किसी के लिए किसी का अनिष्ट नहीं किया जा सकता। बहुसख्यको के लिए अल्पसख्यको की बलि नहीं दी जा सकती। इसी तरह रग भेद, विचार भेद, व्यवस्था भेद आदि को भी ऐकातिक या निरपेक्ष दृष्टिकोण के आधार पर स्वीकार नहीं किया जा सकता।

आज विश्व स्वयं सहअस्तित्व के विचार की तरफ बढ रहा है, सापेक्षता की तरफ बढ रहा है। क्योकि परमाणविक युग में यही उसका प्राण है। विकसित राष्ट्र विकासशील राष्ट्रों से निरपेक्ष रहकर अपना अस्तित्व दीर्घकाल तक नहीं बनाए रख सकते, उनकी स्वय की समृद्धि ही उन्हें लील जाएगी। इसलिए विकसित राष्ट्रो ने अविकसित एव विकासशील राष्ट्रों की सापेक्षता को स्वीकार किया है तथा उनके विकास में सहयोग प्रदान करने की इच्छा प्रकट करते हैं।

वर्ग-विग्रह का समाधान : सहअस्तित्व

यह जगत् द्वन्द्वात्मक है। द्वन्द्वात्मक जीवन एक सच्चाई है जो यह बताती है कि विरोधी धर्मों को एक साथ रहना ही चाहिए। विरोधी युगलों का सहअस्तित्व संभव है क्योकि उनमें सर्वथा विरोध नहीं है, समन्वय के अनेक तत्त्व विद्यमान हैं। जैन दर्शन के अनुसार अनन्त आत्माए हैं और सभी आत्माएं एक-दूसरे से स्वतंत्र हैं। जैसे अनेक आत्माए हैं वैसे ही उनकी योनिया अर्थात् उत्पत्ति स्थान भी अनेक हैं। कोई आत्मा पशु है, कोई मनुष्य। मनुष्य जाति मे भी विभाजन है। कोई गोरा है, कोई काला है। कोई उष्ण कटिबन्धीय है कोई शीत कटिबन्धीय आदि-आदि। महावीर के युग में वर्ण व्यवस्था का प्रचलन था। उस व्यवस्था मे मनुष्य जाति ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चार वर्णों मे विभाजित थी। यह विभाजन मनुष्य के सस्कार, भौगोलिक वातावरण व समाज व्यवस्था के आधार पर था। मनुष्य के अहकार के कारण उच्चता व निम्नता की दीवारे खडी हो गईं और जन्मना जाति स्थापित हो गई। उच्च कहलाने वाले लोग हीन कहलाने वाले लोगो के साथ दुर्व्यवहार करने लगे। महावीर ने सोचा—जब वस्तु जगत् मे सहअस्तित्व और समन्वय है तो मनुष्यों मे क्यो नहीं? इस आधार पर मैत्री का सदेश दिया गया—सब जीवों के साथ मैत्री करो। पर स्वभाव, रुचि और चिन्तन-धारा भिन्न होने के कारण मैत्री टूट जाती है। मैत्री को साधने का सूत्र दिया—सहिष्णुता का प्रयोग करो।

सह-अस्तित्व का आधार

महावीर ने कहा—भेद में छिपे अभेद को देखो। तुम जिससे जितने भिन्न हो, उतने ही अभिन्न भी हो और जिससे अभिन्न हो, उससे उतने ही भिन्न हो। जब सभी प्राणियों से भिन्न और अभिन्न हो, तब भेद मानकर किसी को शत्रु क्यो मानते हो? जिसे तुम नीच मानते हो, वह भी तुम्हारे मन का अहकार है और जिसे तुम उच्च मानते हो, वह भी तुम्हारे मन का अहंकार है। इसलिए विभाजन के साथ उच्चता और नीचता की रेखाए निर्मित न करो। मनुष्य को

तोड़कर मत देखो। मानवीय एकता को मत भूलो। यही सहअस्तित्व का मौलिक आधार है।

एकता अनेकता से पृथक् नहीं है और अनेकता एकता से पृथक् नहीं है। इसी धरातल पर मानवीय एकता सभव हो सकती है। इसी आधार पर भिन्न-भिन्न प्रणालिया एक साथ चल सकती हैं। अनेकता स्वाभाविक है पर शातिपूर्ण जीवन जीने के लिए सहअस्तित्व अनिवार्य है।

आज सहअस्तित्व को ही समस्याओं का समाधान माना जा रहा है। पर दूसरों के स्वत्व को, आत्मसात् करने की भावना को त्यागे बिना सहअस्तित्व संभव नहीं है। एक व्यक्ति, जाति या राष्ट्र जब दूसरो के स्वत्व को हड़प जाना चाहते हैं, तब सहअस्तित्व कैसे सभव हो। सहअस्तित्व के लिए आवश्यक है—स्व का हरण नहीं हो। आज विचारशील व्यक्ति व राष्ट्र दूसरो के स्वत्व से बने विशाल स्वरूप को छोड़कर अपने स्वरूप मे सिमटते जा रहे हैं, यही सामजस्य की रेखा है और यही वर्ग-विग्रह व अन्तर्राष्ट्रीय-विग्रह की समापन रेखा है।

सहअस्तित्व के प्रयोग

1. पारिवारिक जीवन में—पारिवारिक जीवन तभी सफल हो सकता है जब पारिवारिक सदस्यो का शात सहवास हो। पारिवारिक कलह के लिए पीढ़ीगत भिन्नता, वैचारिक भिन्नता, स्तर की भिन्नता आदि अनेक कारण बनते हैं। फिर भी दो पीढ़ी के लोग, दो विचार के लोग व दो भिन्न जीवन स्तर के लोग एक साथ शाति से रह सकते है यदि वे उस भिन्नता मे कोई अभिन्नता का बीज खोज ले। यद्यपि पग-पग पर टकराहट है, स्वार्थ है, भिन्नताए हैं, विरोध हैं पर इनमे समन्वय का प्रयोग करें। विरोध किस जगह नहीं होता। अपेक्षा है समन्वय की। यदि विरोध या भिन्नता मे समन्वय खोजे तो इन विरोधो व भिन्नताओ के बावजूद सहअस्तित्व सभव हो सकता है।

2. सामुदायिक जीवन में—समाज मे हमे वैषम्य देखने को मिलता है क्योकि समत्व का अभाव है। स्वार्थ, मान्यताए और असहिष्णुता— इन वृत्तियो पर शासन करने वाला ही समन्वय का विकास कर सकता है। पुराने समय मे साम्प्रदायिक और जातीय ये दो प्रकार के सघर्ष थे। आज के समाज मे वर्ग-सघर्ष है। वर्ग-संघर्ष तब तक नहीं मिट सकता, जब तक स्वार्थ की वृत्ति खत्म न हो। हम स्वार्थ से ऊपर उठकर यह सोचे कि छोटे-बड़े सभी मनुष्यो मे एकता

है, समानता है। इसलिए हम एक साथ रह सकते हैं। सहअस्तित्व से ही समाज सुन्दर बन सकता है।

विश्वशांति और सहअस्तित्व

आज राजनैतिक क्षेत्र मे सहअस्तित्व की ध्वनि मुखर हो रही है। सयुक्त राष्ट्र सघ भी इसके लिए प्रयास कर रहा है। और यह सगठन सहअस्तित्व का एक अच्छा उदाहरण भी है। क्योकि यहां परस्पर विरोधी राष्ट्र एक साथ बैठकर विश्व की ज्वलन्त समस्याओ पर विचार-विमर्श करते हैं।

आज के परमाणविक युग मे जब हिंसा समग्र हो गई है और हमारे पास केवल दो ही विकल्प हैं—या तो हम अहिंसा व विश्वशाति को अपना ले या फिर महाविनाश के लिए तैयार हो जाए। हिंसा की समग्रता ने सहअस्तित्व की धारणा को और अधिक पुष्ट किया है। भिन्नता से लड़ाई कब तक करते रहेगे। युद्ध से तो यह मानव जाति ही समाप्त हो जाएगी। मनुष्य जाति को जीना है तो उसका एकमात्र मार्ग है—सहअस्तित्व।

प्रमुखता की दृष्टि से सभी राष्ट्र स्वतत्र हैं पर सामर्थ्य की दृष्टि से समानता नहीं है। कोई राष्ट्र शक्तिशाली है तो कोई कमजोर। कोई समृद्ध है, कोई गरीब। सभी राष्ट्रो मे कुछ साम्य भी और कुछ वैषम्य भी। यदि वैषम्य को प्रधान माने तो दूसरो को मिटाने की बात आएगी और केवल साम्य को प्रधान माने तो भी ऐकान्तिक आग्रह होगा और उसका परिणाम होगा—शीतयुद्ध। महावीर ने कहा—विरोधी युगलो का सहअस्तित्व सभव है क्योकि उनमे सर्वथा विरोध नहीं है। इसी विचार के आधार पर पूजीवाद और समाजवाद एक साथ रह सकता है। लोकतत्र व एकतत्र एक साथ रह सकता है। क्योकि विरोधी प्रणालियो मे सहअस्तित्व है।

सह-अस्तित्व के तीन सूत्र

सहअस्तित्व के विकास के लिए ये तीन सूत्र सुझाये जाते हैं—

1. आश्वासन—एक-दूसरे के प्रति आश्वस्त हो। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के प्रति, एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के प्रति। अन्यथा आशकाए, शीतयुद्ध व सघर्ष को जन्म देगी।

2. विश्वास—द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद राष्ट्रो और विशेषकर महाशक्तियों के बीच अविश्वास की जडे गहरी हो गईं, उसका परिणाम हुआ—शीतयुद्ध। सहअस्तित्व के लिए अपेक्षित है एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का व एक राष्ट्र दूसरे

राष्ट्र का विश्वास करे।

3. अभय—अविश्वास शस्त्र-विस्तार को जन्म देता है, जबकि विश्वास अभय को जन्म देता है। अभय से निशस्त्रीकरण सभव है।

सहअस्तित्व के ये तीनो सूत्र परस्पर जुडे हुए हैं। आश्वासन से विश्वास पैदा होगा और विश्वास से अभय। उदाहरणत यदि परमाणु सधि होती है तो वह विश्व को एक आश्वासन होगा, उससे विश्व के राष्ट्रो में विश्वास का वातावरण बनेगा और नागरिक अभय हो जायेगे।

अत शातिपूर्ण जीवन या शान्त-सहवास के लिए सहअस्तित्व का सूत्र बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। जैनो का एक प्रसिद्ध वाक्य है—परस्परोपग्रहो जीवानाम्। प्रकृति का नियम है कि हम परस्पर एक-दूसरे का सहारा बने। हमे विरोध इसलिए है कि हमने सहअस्तित्व के सूत्र को भुला दिया है। सघर्ष प्रकृति का नियम नहीं, आरोपण है, विसगति है। सहअस्तित्व मे सन्तुलन है, सगति है, इसलिए विरोधी तत्त्वों का भी सहअस्तित्व सभव है। आज यह सूत्र राष्ट्रीय एकता या मानवीय एकता धार्मिक सहिष्णुता और विश्व-शाति आदि के लिए महत्त्वपूर्ण है। आवश्यक है इसके प्रयोग की। नेहरू ने जब पचशील के सिद्धान्त मे सहअस्तित्व का समावेश किया था, तब इस सूत्र को राष्ट्रो के परस्पर व्यवहार के लिए महत्त्वपूर्ण सूत्र माना गया था, पर उपेक्षा के कारण आज विश्व विनाश के कगार पर है। आज यह सूत्र किसी धर्मनेता का नहीं, बल्कि युग की माग है।

विकास के लिए आवश्यक है दूसरे के विचारों को सहना

अकेला व्यक्ति सघर्ष नहीं कर सकता। सामुदायिक जीवन मे सघर्ष, वैमनस्य, बैर-विरोध आदि देखे जाते हैं। सामुदायिक जीवन मे ही वस्तुत सहिष्णुता की कसौटी होती है। सहिष्णुता सामुदायिक जीवन का अलकरण है जो सहअस्तित्व और सापेक्षता से ही फलित होती है। सहिष्णुता के बिना सामुदायिक जीवन मे विकास नहीं हो सकता, उन्नति नहीं हो सकती। जब तक समाज के विभिन्न वर्ग के लोग सघर्ष करते रहेगे, एक दूसरे का विरोध करते रहेगे, स्वार्थ के वशीभूत होकर शोषण करते रहेगे, भाषा, धर्म, रग, जाति के आधार पर बटते रहेगे, तब तक विकास, वह भी सबका सर्वतोमुखी विकास सम्भव कैसे हो सकेगा? डार्विन ने विकासवाद का सिद्धान्त देते हुए कहा था—वे ही प्रजातिया बचेंगी जिनमे अनुकूलन की क्षमता है अर्थात् वे प्राणी जो परिस्थिति के अनुकूल बन सकेगे, भविष्य मे बचेगे। सच ही है—शक्तिहीन समाप्त हो जाता है। एक प्राणी दूसरे प्राणी को खत्म करने की कोशिश कर रहा है। अनेकान्त का सिहनाद है—जो सहता है वही बचता है और शक्तिशाली ही सहन कर सकता है।

दूसरे के विरोधी-विचारों के प्रति सहिष्णुता

समाज मे अनेक प्रकार के व्यक्ति रहते हैं, जिनके अनेक विचार हैं। ऐसी स्थिति मे विचारो की टकराहट न हो, सघर्ष न हो, यह कैसे सभव हो सकता है? सहअस्तित्व का सिद्धान्त, जिसके बिना सहिष्णुता फलित नहीं होती, के आधार पर विरोधी विचार, विरोधी व्यक्ति, विरोधी धर्मों का सहअस्तित्व हो सकता है। सबसे अच्छा मार्ग है—सहन करना, समन्वय करना और सहअस्तित्व की चेतना को विकसित करना। भिन्नता से लड़ाई आखिर कब तक करते रहेंगे। युद्ध से तो मानव जाति का ही विनाश हो जाएगा। मनुष्य जाति को जीना

है तो उसका मार्ग है सहिष्णुता और सह-अस्तित्व। प्रत्येक व्यक्ति की यह चाह होती है—सब उस जैसा ही व्यवहार करें। विरोधी रुचियो, विरोधी स्वभावों के बीच टकराहट और युद्ध संभव है पर यदि विरोधी विचारों को सहने की क्षमता है तो न केवल युद्ध टाले जा सकते हैं वरन् शाति की दिशा में विकास भी हो सकेगा।

अनेकान्त कहता है—

1 सत्य की सापेक्ष व्याख्या करो। अपने विचार का आग्रह मत करो। दूसरे के विचारों को समझने का प्रयत्न करो।

2 अपने विचारो की प्रशसा व दूसरे के विचार की निन्दा कर अपने पाडित्य का प्रदर्शन मत करो।

3 प्रत्येक विचार सत्य भी हो सकता है और असत्य भी। इसलिए किसी भी विचार के लिए निरपेक्ष दृष्टिकोण मत अपनाओ।

सहिष्णुता क्या है?

सहिष्णुता है—असहयोग। विरोधी के साथ न प्रवृत्ति करो, न निवृत्ति करो किन्तु उपेक्षा करो। क्रोध करने वाले के साथ क्रोध नहीं, उसकी उपेक्षा करो।

सहिष्णुता का एक अर्थ है—सहन करके सुधार के लिए अवसर देना। किसी व्यक्ति की तुच्छता को सहन करना उसको बिगाडना नहीं, वरन् उसे सुधरने का अवसर देना है। प्रश्न है कि क्या अन्याय को भी सहन करें। अनेकान्त का उत्तर है—अन्याय सहन मत करो पर उसका प्रतिकार सहिष्णुता से हो।

सहिष्णुता का एक अर्थ है—मानसिक शाति। विरोधी विचार व परिस्थितिया व्यक्ति को अशात करती है। अनेकान्त का कथन है—इन विपरीत विचारो, स्थितियो व व्यवस्थाओ को सहन करो तो मानसिक शाति भग नहीं होगी। और यदि व्यक्ति शात है तो विश्व शाति भी सभव है।

सहिष्णुता क्यों?

इस सयोग-वियोग की दुनिया मे सहिष्णुता ही त्राण है। विरोधी व्यक्तियो, विरोधी विचारो, विरोधी परिस्थितियो के बीच यदि व्यक्ति सदैव प्रतिक्रिया ही करता रहेगा तो अपनी क्षमताओ का उपयोग वह विकास के लिए कब करेगा? इसलिए सहिष्णुता प्रतिक्रिया विरति के लिए आवश्यक है।

समाज व विश्व में परिवर्तन के लिए भी सहिष्णुता आवश्यक है। बिना सहनशीलता के परिवर्तन व बदलाव कैसे आ सकेगा। किसी कार्य को करते

समय—"**कोई क्या सोचेगा**", इस पर ध्यान न देकर "**मुझे क्या करना है**" इस पर ध्यान देना परिवर्तन की क्रियान्विति के लिए कदम उठाना है।

सुविधाओं के विकास के साथ व्यक्ति की सहनशीलता भी समाप्त हो गई है। व्यक्ति मे धैर्य नहीं, शक्ति नहीं, सहन करने की क्षमता नहीं, अधीरता है। इसलिए भी सहिष्णुता की अपेक्षा है ताकि सुविधावाद जो अन्ततः हिंसा की ओर धकेलता है, उससे बच सके।

सहिष्णुता के विकास से ही अनुशासन का विकास सभव है। अनुशासनहीनता की समस्या किसी एक राष्ट्र की नहीं, वरन् पूरे विश्व की है। सहिष्णुता के विकास से अनुशासनहीनता समाप्त होती चली जाएगी। सहिष्णुता व्यक्ति मे शक्ति का वर्द्धन भी करेगी जो अन्तत उसे क्षमा के आदर्श तक पहुचा सकेगी।

सहिष्णुता का विकास कैसे हो?

सहिष्णुता के विकास के लिए कुछ मार्गदर्शक तत्त्व का प्रयोग भी सम्भव है—

1 **सवेगो पर नियन्त्रण करें**—विपरीत परिस्थिति के आते ही व्यक्ति सवेगो के भवर मे फस जाता है। क्रोध या अहकार जब प्रबल होता है तब व्यक्ति यह भूल जाता है उसे कैसा व्यवहार करना चाहिए। इसलिए सहिष्णुता के विकास के लिए क्रोध, भय, अहकार, राग-द्वेष आदि सवेगो पर नियन्त्रण करे।

2. **दृष्टिकोण सम्यक् बनाए**—वस्तु सत्य को उसी रूप मे जाने। कोई व्यक्ति कब, कहा, कैसे और किन परिस्थितियो मे कह रहा है, उसे उसी आधार पर समझने की कोशिश करें अर्थात् यथास्थिति को स्वीकारे।

3 **साहसिका**—समस्या सुलझाने के लिए एक साथ बैठे। व्यक्तियो के बीच सचार के अभाव मे सघर्ष बढ जाते हैं। इसलिए उचित सचार के लिए एक साथ बैठकर विचार-विमर्श करे।

4. एक दूसरे को समझने का प्रयत्न करे।

5 उपवास व सूर्य आतापना से सहनशीलता का विकास समव है।

6. मस्तिष्क के अग्रभाग व ललाट जिन्हे क्रमश शातिकेन्द्र व ज्योतिकेन्द्र कहा जाता है—इन दोनों केन्द्रो पर ध्यान करें फिर क्रमशः दोनो केन्द्रो पर सफेद रग का ध्यान करें।

7. **अनुचिंतन करें**—विरोधी विचार, विरोधी स्वभाव, विरोधी रुचि—ये

संवेदन मुझे प्रभावित करते हैं, किन्तु इनके प्रभाव को कम करना है। यदि इनका प्रभाव बढ़ा तो शक्तिया क्षीण होंगी। जितना इनसे कम प्रभावित होऊंगा, उतनी ही शक्तियां बढेंगी। इसलिए सहिष्णुता का विकास मेरे जीवन की सफलता का महामत्र है।

सहिष्णुता के विकास की भूमिकाएं

1 परिस्थितियो को सहन करना।

2 दूसरे व्यक्तियो को सहन करना।

3 अपने से भिन्न विचारो को सहन करना।

4 राग-द्वेष की तरगो का सामना कर उन्हे परास्त करना।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि सहिष्णुता का विकास न केवल पारिवारिक कलहो को दूर करेगा बल्कि समाज, धर्म, राष्ट्रीयता व अन्तर्राष्ट्रीय सघर्षों को भी समाहत कर सकेगा। विशेषत उन सघर्षों को जो वैचारिक हैं, जो महत्त्वाकाक्षाओ पर आधारित हैं, जो भय की भावनाओ या अविश्वासो के कारण हैं। क्योकि यह दूसरे के विचारो को सहन करना सिखाता है। महत्त्वाकाक्षाओ व भय के सवेगो पर नियन्त्रण करता है तथा आपसी विचार-विमर्श के द्वारा अविश्वासो को दूर करता है। इसलिए वैचारिक अशाति का महत्त्वपूर्ण निदान है—सहिष्णुता का विकास दूसरे के विचारो को सहना।

शांति शिक्षा

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के सन्दर्भ में शांति का स्वरूप

विश्वशाति मानव-जाति के अस्तित्व, विकास एव प्रगति के लिए अत्यन्त आवश्यक है। युद्ध या युद्ध का भय, विकास एव प्रगति के सभी साधनों को शातिपूर्ण उपयोग से हटाकार युद्ध या युद्ध की तैयारियो के लिए मोड देता है। मानव-इतिहास के रक्तरजित पृष्ठ युद्ध की भयानकता व विनाशता के जीवन्त उदाहरण हैं। जब-जब मानवता युद्ध से त्रस्त हुई, तब-तब शाति की अधिकतम आवश्यकता महसूस की गई। बीसवीं शताब्दी से पूर्व विश्वशाति के सामूहिक प्रयास बहुत कम हुए। कलिग-युद्ध के पश्चात् सम्राट अशोक ने युद्ध का परित्याग कर अहिंसा के मार्ग पर चलने का प्रण किया। बाद मे एशिया, अफ्रीका, यूरोप आदि क्षेत्रो मे युद्धोपरान्त जो सधिया हुईं, उनका उद्देश्य द्विपक्षीय विवादो को समाप्त कर क्षेत्रीय शाति कायम करना था। प्रथम विश्वयुद्ध की बीभत्सता को दृष्टिगत रखते हुए युद्ध टालने एव शाति कायम करने हेतु "लीग ऑफ नेशन्स" की स्थापना हुई लेकिन युद्ध सकट फिर भी न टल सका तथा द्वितीय विश्वयुद्ध के महाविनाश का सामना करना पडा। शाति स्थापना तथा परस्पर विवादो के हल हेतु सयुक्त राष्ट्र सघ की स्थापना की गई। सयुक्त राष्ट्र सघ के उद्देश्यो मे विश्वशाति तथा सुरक्षा को कायम रखना एवं शाति के लिए उत्पन्न खतरों को सामूहिक सुरक्षा द्वारा रोकना प्रमुख है।

शांति क्या है?

विभिन्न धर्म-दर्शनों एव राजनीतिज्ञों ने शांति की अलग-अलग व्याख्याएं प्रस्तुत की हैं। ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार "शांति" शब्द का अर्थ है— युद्ध से मुक्ति, दो युद्ध शक्तियों मे शाति सधि। अर्थात् युद्ध की समाप्ति तथा युद्धरत राष्ट्रो मे सधि कर शाति स्थापित की जा सकती है।

पॉनविट्ज का मत है—"हमारे पास युद्ध के विरुद्ध सभावित कारण हो सकते है—जब हम यह नहीं जानते कि शाति क्या है, कैसे हो सकती है, तब तक ये कारण हमारी सहायता कैसे कर सकते हैं?" अर्थात् पॉनविट्ज के अनुसार युद्ध और शाति का परस्पर सम्बन्ध स्थापित करने से पूर्व कई विरोधाभासों का समन्वय करना अनिवार्य है—

1 विगत अनुभवो के आधार पर शाति के सही स्वरूप की समीक्षा।

2 यह जानना कि भविष्य मे क्रियात्मक रूप से किस प्रकार शाति स्थापित की जा सकती है तथा

3 श्रेष्ठ प्रकार की शाति की परिभाषा जो अन्तत प्राप्त करनी है।

क्विसी राईट के अनुसार—' शाति किसी समाज की वह अवस्था है, जिसमे आतरिक रूप से इसके सदस्यो तथा बाह्य रूप से इसके अन्य समुदायो के साथ सम्बन्धो मे व्यवस्था तथा न्याय का बोलबाला हो।" कुछ समाज-शास्त्रियो जैसे लियोहेमन, जुलेस मॉक आदि ने शाति को 'युद्ध न होने" (Warlessness) के रूप मे व्याख्यायित किया है। प्रो० गाल्टुग ने इस दृष्टिकोण की आलोचना करते हुए शाति से सम्बन्धित दो भिन्न अवधारणाए दीं—पश्चिमी अवधारणा और पूर्वी अवधारणा। पश्चिमी अवधारणा के अनुसार युद्ध या आयोजित सामूहिक हिंसा का अभाव शाति है। तनाव, शोषण और सरचनात्मक हिंसा के अभाव को भी शाति कहा जा सकता है। शाति से सम्बन्धित इन विचारो को निषेधात्मक शाति की सज्ञा दी जाती है। इसलिए शाति के दूसरे पक्ष भावात्मक शाति पर भी विचार अपेक्षित है।

भारतीय शाति चिन्तक सुगतदास के अनुसार सामाजिक और मानवीय विकास की प्रक्रिया को भावात्मक शाति कहा जा सकता है। उनके अनुसार शाति का यह अर्थ गाधी ने प्रारम्भ किया था पर उन्होने शाति के प्रतिपक्ष हिसा की व्याख्या पहले की थी। हिंसा से उनका अर्थ केवल शक्ति प्रयोग, खूनी क्राति आदि ही नहीं, पर सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक शोषण भी है। भले ही यह शोषण एक राष्ट्र के द्वारा किसी दूसरे राष्ट्र का किया जाय या एक व्यक्ति द्वारा किसी दूसरे व्यक्ति का या किसी पुरुष द्वारा स्त्री का शोषण किया जाय। जबकि शाति का रचनात्मक या भावात्मक स्वरूप है—समाज व मनुष्य का समग्र विकास, एकता, सहयोग और स्थिरता। इसलिए एक तरफ तो समाज में हिंसा व शोषण रुकना चाहिए, जबकि दूसरी तरफ

मनुष्य व समाज का समग्र विकास भी होना चाहिए। यही शांति का समग्र रूप है। शाति का केन्द्र मानवीय मस्तिष्क है, इसलिए अतिम रूप से शांति व्यक्ति को महसूस होनी चाहिए। एक व्यक्ति जब शांति की अवस्था में होगा, तब वह केवल अवरोधों व तनावो से ही स्वतत्र नहीं होगा, वरन् भावात्मक रूप से सन्तुष्टि व आनन्द का भी अनुभव करेगा। इसलिए शाति का न्यूनतम रूप है—प्रत्यक्ष और संरचनात्मक हिंसा का अभाव और अधिकतम रूप है—पूर्ण शाति। सक्षेप में गाल्टुग के विचारो के आधार पर शाति का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

1 युद्ध या सगठित रूप से सामूहिक हिंसा का अभाव।

2 नकारात्मक शाति—हिंसा के साथ हिंसात्मक सम्बन्धों का अभाव तथा शातिपूर्ण सहअस्तित्व जिसका प्रमुख आधार हो।

3 सकारात्मक शाति जिसमे परस्पर सहयोग हो पर कभी-कभी हिंसा की घटनाए सम्भव हैं।

4 अनक्वालीफाईड पीस, जिसमे हिंसा की पूर्ण अनुपस्थिति परस्पर सहयोग के साथ सम्बन्धित हो।

शांति के प्रति दृष्टिकोण

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो एव प्रतिरक्षा सम्बन्धी साहित्य मे युद्ध के विकल्प एव शाति के प्रति दृष्टिकोणो पर कई प्रस्ताव सुझाये गये हैं। इनमे से कुछ युद्ध के कारणो को जानने तथा कुछ अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को शातिपूर्ण ढग से हल करने पर बल देते हैं जबकि कई विभिन्न प्रकार की सुरक्षा नीतियो एव उपायों की खोज को महत्त्व प्रदान करते हैं। निम्नाकित तीन दृष्टिकोण अधिकाशत शाति दृष्टिकोणो के रूप में मान्य है—

1 सस्थात्मक दृष्टिकोण

2 कार्यात्मक दृष्टिकोण

3 आरोग्यकर दृष्टिकोण

संस्थात्मक दृष्टिकोण

शाति स्थापित करने के लिए संस्थाओ का प्रावधान 20 वीं शताब्दी से पूर्व नहीं था। संस्थाओं द्वारा शाति स्थापित करना तथा उसे कायम रखने की प्रक्रिया का विकास इसी शती की देन है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् अन्तर्राष्ट्रीय एव क्षेत्रीय स्तर पर विभिन्न सस्थाओ का उदय हुआ, जिनका

मुख्य उद्देश्य था विश्वशाति कायम रखना। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के अतिरिक्त विभिन्न देशों के मध्य अनेक सधियों के सम्पन्न होने के परिणाम स्वरूप कई क्षेत्रीय सस्थाओं का भी उदय हुआ। इन सस्थाओ ने स्थानीय विवादो का शातिपूर्ण वार्ताओ द्वारा निपटारा कराकर शाति के लिए निरापद मार्ग प्रशस्त करने मे काफी योगदान दिया है। मूलत' इनकी सफलता इनके उपयोग पर निर्भर है।

कार्यात्मक दृष्टिकोण

यह दृष्टिकोण सुरक्षा सगठनो को स्थापित करने की अपेक्षा सामान्य हितो तथा आत्मनिर्भरता पर बल देता है। पॉमर एव परकिन्स के अनुसार—इस दृष्टिकोण का लक्ष्य है—राष्ट्रो के मध्य सहयोग बढ़ाना, जो राजनैतिक स्तर पर लगभग दुर्लभ है। दूसरी तरफ राष्ट्र आर्थिक, सामाजिक तथा तकनीकी क्षेत्रों मे परस्पर साथ मिलकर कार्य करने के इच्छुक हैं—ऐसा सहयोग न केवल मूल्यवान है, अपितु इसके द्वारा ऐसा वातावरण तैयार करने मे सहायता मिलती है, जिससे राष्ट्रो एव व्यक्तियो को एकता के सूत्र मे बाधा जा सकता है।

आरोग्यकर दृष्टिकोण

यह दृष्टिकोण दूरगामी है, जिसके अन्तर्गत गरीबी, भुखमरी, अकाल, जातीय एव वर्ग शोषण इत्यादि आर्थिक एव सामाजिक बुराईयों पर सुनियोजित आक्रमण किया जाता है। इन कार्यो के लिए भी अन्तर्राष्ट्रीय एव क्षेत्रीय एजेन्सियो का ही सहयोग लिया जाता है।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर हम कह सकते हैं कि चिरस्थायी शाति हेतु आरोग्यकर दृष्टिकोण ही उपयुक्त है क्योकि इसी दृष्टिकोण के द्वारा राजनैतिक, सामाजिक एव आर्थिक समस्याए जो युद्ध या तनाव को जन्म देती है, को स्थानीय स्तर पर ही हल करके अन्तर्राष्ट्रीय शाति एव सुरक्षा को चिरस्थायी बनाया जा सकता है।

शांति शिक्षा—सिद्धान्त और विकास

शांति शिक्षा की आवश्यकता

वर्तमान में शाति शिक्षा की अभिरूचि केवल शांति और युद्ध की समस्या तथा राजनैतिक सघर्षों तक ही सीमित है। शाति की नवीन परिभाषा के अनुसार युद्ध या हिंसा राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सघर्षों में सतत विद्यमान है। क्योंकि कुविकास (Mal development) गरीबी, आतरिक हिंसा और युद्ध मे एक निकट सम्बन्ध देखा जा सकता है। इसलिए युद्ध विरोधी साधनो का विकास व खोज आवश्यक है। इन युद्ध विरोधी साधनो का उद्देश्य केवल युद्ध और हिंसा को समाप्त करना नहीं है अपितु सभी प्रकार की हिंसा और समाज मे सभी स्तरो मे व्याप्त सभी प्रकार के शोषण को समाप्त करना है। इसलिए शाति शिक्षा का आन्दोलन वस्तुत सम्पूर्ण व मूलभूत परिवर्तन का है। अहिसा, हिसा का विरोध मात्र नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन की सम्पूर्ण शक्ति है। इस प्रकार शाति शिक्षा का विचार नये समाज के निर्माण के लिए है। शाति शिक्षा मे शाति के इस नवीन सप्रत्यय को सम्मिलित करना होगा। जिससे समाज परिवर्तन के साथ अन्तर्राष्ट्रीय परिवर्तन व कलह-शमन भी सम्भव हो सके।

शाति शिक्षा के विचार का विकास

पाश्चात्य जगत् मे शाति शिक्षा का विचार सर्वप्रथम कोमेनियस ने 1667 मे प्रकाशित अपनी पुस्तक एजेल ऑफ पीस मे रखा था। बाद मे रूसो शाति शिक्षा के विकास मे मील के पत्थर बने। उनके शाति शिक्षा सम्बन्धी विचार का आधार था—"मनुष्य स्वभाव से शातिप्रिय है, जब उसे अपने जीवन पर कोई खतरा नजर आता है, तभी वह हिंसक बनता है।" रुसो के पश्चात् पेस्टालॉजी व फ्रोबल ने शाति शिक्षा को एक नई दिशा दी। फ्रोबल का मानना था—बच्चे की प्रारम्भिक शिक्षा का महत्त्वपूर्ण तथ्य शाति शिक्षा है। वयस्को के लिए जीने का शातिपूर्ण तरीका हो, जिससे भाषा, विचार और क्रिया के बीच सामजस्य स्थापित हो सके। 19 वीं शताब्दी मे शातिशिक्षा समाजवाद

से प्रभावित हुई। मार्क्स, लेनिन आदि समाजवादियो ने कहा—शिक्षा सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास के लिए होनी चाहिए। 20 वीं शती में शातिशिक्षा को अमेरिका मे विकासशील शिक्षा (Progressive Education) तथा सोवियत संघ मे स्वतंत्र शिक्षा (Free Education) की सज्ञा दी गई।

प्रथम विश्वयुद्ध के पहले शाति शिक्षा का विषय नहीं था। 1890 में केवल नीदरलैण्ड मे इसे पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया गया था, जहा मोल्केनबोवर ने इसे अध्यापको को पढ़ाने के लिए कहा। बाद मे ब्रूमन, मॉण्टेसरी, बैकमेन, डेसबर्ग आदि कई शिक्षाशास्त्री शाति शिक्षा से जुडे। ये सभी शिक्षाशास्त्री नीदरलैण्ड की शाति शिक्षा से प्रभावित थे। इसी समय शाति शिक्षा के साथ-साथ शांति के लिए शिक्षा का विचार भी सामने आया। शाति शिक्षा का अर्थ है—शाति स्थापित करने के लिए लोगो को शिक्षित-प्रशिक्षित करना। शाति के लिए शिक्षण का उद्देश्य है—युद्ध व शस्त्रीकरण का समाज पर क्या दुष्परिणाम होगा, इससे सम्बन्धित जानकारी लोगो को बताना तथा उन दुष्परिणामो को दूर करने के उपायो को सुझाना। शाति के लिए शिक्षण के तीन मुख्य प्रतिनिधि हुए हैं—फोयरस्टीर, मॉण्टसरी व ओएस्टरिच, जिन्होने शाति शिक्षण का विकास किया।

फोयरस्टीर का मानना था—"मनुष्य अपने प्राकृतिक स्वभाव का दमन कर आध्यात्मिक उत्थान का प्रयत्न करता है। आध्यात्मिक उत्थान तभी सम्भव हो सकता है जब वह विश्वात्मा से मिल जाय, इसके लिए शाति शिक्षा प्रभावी है क्योकि शाति का अर्थ ही है—विश्वात्मा के समकक्षता।" मॉण्टसरी का मानना था—"बच्चे का निर्माण तो स्वय होता है। शिक्षा का कर्तव्य बस इतना ही है कि वह उस निर्माण मे जो बाधाए आयें, उसे दूर कर दें।" अर्थात् एक ऐसा पर्यावरण तैयार कर देना, जिसमे बच्चा स्वय के सिद्धान्तो के आधार पर अपना निर्माण व विकास कर सके। ओएस्टरिच का मानना था—"शाति केवल सस्कृति के पुनर्निर्माण से ही सम्भव हो सकती है। प्रत्येक व्यक्ति इस सस्कृति का एक घटक है। व्यक्तिगत स्तर पर वह एक अश दिखाई देगा जबकि समूह में भाईचारे व मानवीयता की भावना विकसित होगी जो उत्पादक और सम्पूर्ण शिक्षा से ही आएगी तथा ऐसी शिक्षा शातिपूर्ण होगी।" उन्होने यह भी कहा—शाति शिक्षा, यह एक पुनरुक्ति है। सही शिक्षा, सभी के लिए, सभी लोगों में—यही तो शांति का आदर्श है।"

शांति शिक्षा के विकास मे ड्यूवी की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। ड्यूवी ने कहा—"वह वातावरण जिसमें शिक्षा ली जाती है, शिक्षा की गुणवत्ता पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालती है। शांति शिक्षा तो हमारे जीवन जीने का रास्ता होना चाहिए। समाजवादी विचारकों में केवल टॉलस्टाय ने ही शांति शिक्षा के सम्बन्ध मे महत्त्वपूर्ण प्रभाव छोड़ा। उन्होने कहा—"एक व्यक्ति स्वय में आस्था, नैतिकता, भाईचारे व शाति के लिए ही शिक्षित होना चाहिए।"

शाति शिक्षा का जो स्वरूप वर्तमान मे है, उसका विकास द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद हुआ है। 1945 के पश्चात् शाति शिक्षा में तीन मुख्य बाते जुडी—

1 अन्तर्राष्ट्रीय समझ विकसित करने के लिए शिक्षा
2 राजनैतिक शिक्षा एव
3 वैशविक शिक्षा

अन्तर्राष्ट्रीय समझ को शाति शिक्षा मे सम्मिलित करने का विचार यूनेस्को के प्रयत्नो से सम्भव हुआ। राजनैतिक शिक्षा का विचार 1960 मे कोरिया और वियतनाम के युद्धो के परिणाम स्वरूप सामने आया। वैशविक शिक्षा का विचार प्रो० गाल्टुग एव फैरी के इस सिद्धान्त से विकसित हुआ—"शाति शक्ति के समान बटवारे व ससाधनो के समान बटवारे के बिना कभी भी प्राप्त नहीं की जा सकती।'

शाति शिक्षा सम्बन्धी विचार को भारतीय वाङ्मय के आधार पर इस रूप मे रखा जा सकता है—विश्वशाति तभी सम्भव है, जब प्रत्येक व्यक्ति अपने मन-मस्तिष्क को इस हेतु तैयार करे और ऐसा तभी सम्भव हो सकता है जब व्यक्ति के शरीर, मन, भाव और भाषा के बीच सही समन्वय हो अर्थात् सम्पूर्ण मानव का निर्माण हो।

अन्तर्राष्ट्रीय समझ के लिए शिक्षा

यद्यपि इस विचार का उद्गम 1940 से पूर्व ऐसे सगठनो में हो चुका था जो अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय के क्षेत्र मे कार्यरत थे। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् शाति के प्रति आदर्शों को व्यवहार मे लाने हेतु नये संगठनो (Fnendship among children and youth एव American Friends School Affiliation Service) का उदय हुआ। पुराने प्रतिद्वन्द्वी फ्रास और फैडरल जर्मनी के बीच शाति की शुरूआत के लिए पेस क्रिस्टी (Pase Chiristi) ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन संगठनो का मुख्य उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय समझ को विकसित

करना था, जिससे विश्व और अधिक शातिपूर्ण हो सके।

1974 में यूनेस्को ने अन्तर्राष्ट्रीय समझ, सहयोग और शाति के लिए शिक्षा तथा मानवाधिकार एवं मूलभूत स्वतत्रता से सम्बन्धी शिक्षा को अनुशंसित किया, जो शांति शिक्षा के प्रति एक बड़ा महत्त्वपूर्ण कदम था।

राजनैतिक शिक्षा

शाति शिक्षा के विकास का दूसरा कदम शीतयुद्ध, कोरिया सकट एव वियतनाम सकट के प्रतिक्रिया स्वरूप उठाया गया, जिसका पूर्ण विकास 1970 में हुआ तथा राजनैतिक शिक्षा की स्वीकृति हुई। यद्यपि शिक्षाशास्त्रियो द्वारा शाति शिक्षा के विचार को गम्भीरतापूर्वक नहीं लिया गया। अधिकाश लोगो की मान्यता थी– शाति राज्य का मामला है, इसलिए सरकार से सम्बन्धित है।

अन्तर्राष्ट्रीय समझ के प्रति घटती आशा के बावजूद परमाणु शस्त्रो के खतरे एव शाति आन्दोलनो के अनुभव–इन दो तत्त्वो ने शाति शिक्षा के इस नये स्वरूप को उजागर किया। नये स्वरूप के विचार में यह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण अनुभव था कि शाति की दिशा मे सरचनात्मक परिवर्तन राजनैतिक परिवर्तनो का परिणाम है।

शाति शिक्षा के इस सप्रत्यय का प्रबल पक्षधर गियासेकी (Giesecke) था जिसने 1960 मे अपना सिद्धान्त विकसित कर समाज के सभी स्तरो के मूलभूत प्रजातत्रीय ढाचे पर बल दिया। गियासेकी ने अपने सिद्धान्त के व्यावहारिक रूप को व्याख्यायित करते हुए शाति शिक्षा के निम्न उद्देश्यो की चर्चा की–

1 सघर्षों को विश्लेषित करना सीखना।
2 सामाजिक सन्दर्भों मे सघर्षो का परीक्षण करना।
3 ऐतिहासिक चेतना को उभारना।
4 राजनैतिक सहभागिता के अनुभव का चातुर्य प्राप्त करना।

वैशविक शिक्षा

1970 के पश्चात् यह विचार सामने आया कि सत्ता के समान खण्ड एव संसाधनों के समान बटवारे के बिना शाति कभी भी प्राप्त नहीं की जा सकती। यह विचार जो न्याय व सरचनात्मक हिंसा के विश्लेषण पर आधारित था– शाति शिक्षा के क्षेत्र मे एक नया विकास था, इसे ही वैशविक शिक्षा का नाम दिया गया।

गाल्टुंग के विचार में वैश्विक शिक्षा राष्ट्रों के बीच रचनात्मक सहयोग पर बल देती है तथा अत्याचारियों द्वारा आरोपित प्रतिस्पर्धा एवं विरोधों को समाप्त करती है। इसी सन्दर्भ में फ्रेयरी (Freire) का कहना है—मनुष्य विश्व को आलोचनात्मक दृष्टि से देखने तथा बदलने के लिए स्वयं इससे अलग हो सकता है तथा इस आलोचनात्मक दृष्टि तथा स्वयं चेतना के आधार पर स्वयं अपने विश्व की रचना कर सकता है।

गाल्टुग व फ्रेयरी के इन्हीं विचारो पर आधारित अन्तर्राष्ट्रीय शांति-शोध एसोसियेशन के शांति-शिक्षा कमीशन ने ऐसे लोगों से संचार की एक कार्य-योजना तैयार की है जो इस अत्याचार की प्रक्रिया के अग है। नेपल्स, बैंगलोर, न्यूयार्क, अमस्टरडम, मेलबोर्न की गन्दी बस्तियों में रह रहे लोग अत्याचार के इस तत्र के विरुद्ध सघर्ष कर रहे हैं तथा अपनी स्थितियो को सुधारने हेतु सगठन एव संचार का प्रयत्न कर रहे हैं। इसके कार्यों में नेपल्स व बैगलोर के सगठन सहायता व मार्गनिर्देशन कर रहे हैं।

शांति शिक्षा—सैद्धान्तिक प्रस्ताव

शाति शिक्षा के मुख्यत तीन सैद्धान्तिक प्रस्ताव हैं—

1 शाति शिक्षा की वैद्यता।

2 शाति शिक्षा एव नि शस्त्रीकरण शिक्षा।

3 शाति और शाति शिक्षा की दुविधाए।

शांति शिक्षा की वैद्यता

यह शाति शिक्षा की औचित्यता का दृष्टिकोण है जो शाति शिक्षा की विषय-वस्तु व व्यवहार के अन्तर पर निर्भर है। इसमें निम्नाकित सिद्धान्त सम्मिलित हैं—

(अ) इस प्रकार की शाति शिक्षा हिंसा का विरोधकर सैनिक विरोधी अभिवृत्ति का निर्माण करती है तथा युद्ध सम्बन्धी खेल, खिलौनों तथा हिंसक प्रचार का निषेध करती है।

(ब) यह आक्रामकता को कम करने हेतु इसके कारणो का पता लगाकर, इन पर कैसे काबू पाया जाए ताकि समाज को कम से कम क्षति हो, इसकी प्रक्रिया सिखाती है।

(स) यह सघर्ष को शाति शिक्षा का अग मानती है तथा इसका लक्ष्य लोगो को यह बताना है—सघर्ष मानव-समूहो और समाज का एक महत्त्वपूर्ण

घटक है। संघर्ष का भय व्यक्ति को निषेधात्मक परिणामों की तरफ ले जाता है। शांति शिक्षा लोगों को यह बतलाए कि संघर्ष से कैसे निपटा जाए?

(द) पूर्वाग्रहों तथा शत्रु के प्रति विरोधात्मक रवैये को समाप्त कर व्यक्तियों व सस्कृतियों के प्रति स्वस्थ-समझ को विकसित करना।

(य) प्रत्येक राष्ट्र द्वारा स्वय अपने ही हितो की पूर्ति युद्ध का एक प्रमुख कारण है। इस समस्या के निराकरण हेतु विश्व नागरिकता को प्रोत्साहन तथा विश्व सरकार को राज्यो द्वारा अपनी-अपनी सप्रभुता सौंप देना आवश्यक है।

(र) इस दृष्टिकोण के अन्तर्गत व्यक्ति स्वय युद्ध और शाति के लिए कार्य कर सकते हैं। वे सत्ता व प्रभाव के उन क्षेत्रो को उखाड फेके जो अशाति पैदा करते हैं तथा वे अपनी रचनात्मक सहभागिता, सहयोग, आत्मविश्वास एव ज्ञान से समाज मे परिवर्तन करे।

शांति शिक्षा और निःशस्त्रीकरण शिक्षा

(अ) **आदर्शवादी सकल्पना**—इस विचार का विकास यूनेस्को के उस घोषणा-पत्र से हुआ, जिसमे यह कहा गया है—"युद्ध मानव-मस्तिष्क मे जन्म लेते हैं।" वर्तमान अशातिपूर्ण स्थितियो, जिनमे राष्ट्र सुरक्षा हेतु बडे पैमाने पर शस्त्रीकरण करते हैं, का समाधान वर्तमान पीढी के विचारो मे शातिपूर्ण भविष्य हेतु क्रमश रूपान्तरण है। यह एक आदर्शवादी सिद्धान्त है जिसका विश्वास है—सहिष्णुता तथा परस्पर स्वीकृति के आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय सघर्षों से पैदा होने वाली अशाति की जगह शातिपूर्ण भविष्य का निर्माण किया जा सकता है।

(ब) वैज्ञानिक संकल्पना—इस सिद्धान्त के अनुसार युद्ध के कारणो तथा शस्त्रीकरण के समूचे तत्र से सम्बन्धी वैज्ञानिक शोध के निष्कर्षो को स्कूल के पाठ्यक्रम मे सम्मिलित करना चाहिए तथा यदि सम्भव हो तो पूर्व और पश्चिम दोनो मे एक समान पाठ्य-पुस्तके तथा अध्यापन सामग्री हो।

(स) **वैचारिक संकल्पना**—इस सिद्धान्त के अनुसार शिक्षा समाज परिवर्तन के प्रारम्भ का ही रास्ता नहीं है अपितु यह सामाजिक प्रक्रिया तथा तत्र के पुन प्रस्तुति का एक यत्र भी है। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रभावशाली नियन्त्रण मे पूर्ण सामान्य निशस्त्रीकरण शाति शिक्षा का लक्ष्य नहीं है, अपितु यह शस्त्र नियन्त्रण के प्रभावशाली ढग के बारे मे शिक्षा है जो शस्त्रो की ऊपरी सीमा

के लिए स्वीकृति प्रदान करता है।

(ब) राजनीतिक संकल्पना—यह सिद्धान्त शासक व शासित के सम्बन्धो पर निर्भर है जो यह बताता है कि शासितों को अपनी स्थितियों के प्रति सचेत हो जाना चाहिए तथा शोध कार्य तथा शिक्षा की समन्विति के आधार पर शान्तिपूर्ण विश्व का निर्माण करना चाहिए। अर्थात् इस अर्थ में शाति शिक्षा युद्ध के कारणों व अविकास से सम्बन्धी ज्ञान का स्रोत ही नहीं अपितु यह उन स्थितियो जिनमे शिक्षा का निर्णय हुआ है तथा शिक्षा की विषयवस्तु के बीच सम्बन्धो की भी आलोचनात्मक समझ है।

शांति एवं शांति-शिक्षा की दुविधाएं

यह दृष्टिकोण दो मूलभूत प्रश्नो से सम्बन्धित है—

1 क्या हिंसा के द्वारा शातिपूर्ण समाज रचना सम्भव है या यह केवल अहिसक कार्यों एव साधनो से ही सम्भव है?

2 क्या शातिपूर्ण समाज सरचनात्मक परिवर्तन से सम्भव है या मानवीय विकास से?

उपर्युक्त प्रश्नो पर विचार करे तो यह स्पष्ट होगा कि सैनिक शिक्षा या युद्ध एव हिंसा से शाति स्थापना सम्भव नहीं है। पूजीवादी व समाजवादी ढाचो के ढह जाने से यह और भी अधिक स्पष्ट हो चुका है। शाति केवल अहिंसक प्रशिक्षण और अहिसक कार्यों से ही सम्भव है। कई शाति आन्दोलनों, गाधी, मार्टिन लूथर किग आदि ने अहिसा की शक्ति का पूर्ण परिचय प्रस्तुत किया है।

सरचनात्मक परिवर्तन से समाज मे शाति के पक्षधर गाल्टुग रहे हैं। उनका मानना है—"शासक उच्च वर्ग, शिक्षा के लक्ष्यो का निर्धारण वर्तमान ढाचे की सुरक्षा के लिए करता रहा है, जो हिंसा की सस्कृति है। हमें इस सस्कृति को सरचनात्मक परिवर्तन से तोड़ना होगा क्योंकि सरचनात्मक हिंसा असमान सम्बन्धो की प्रतीक है। हमे इस ढाचे के निषेध के लिए प्रयत्न करना चाहिए तथा अन्याय पर आधारित ढाचे को न्याय पर आधारित ढाचे मे रूपान्तरित करना चाहिए।

मानवीय सुधार द्वारा शाति स्थापित करने के दृष्टिकोण में व्यक्ति को महत्त्व दिया गया है। काट के अनुसार—

- युद्ध कोई ईश्वरीय कार्य या दैविक निर्णय नहीं है।

● शाति का अनुभव वर्तमान की आवश्यकता है, जिसे भविष्य के लिए टाला नहीं जा सकता।

● शांति शिक्षा भी सम्भव है यदि राजनीतिज्ञ, शांति कार्यकर्ताओं तथा शिक्षा-शास्त्रियों को अवकाश दें।

शांति आत्मविश्लेषण का और विशेषकर नैतिक परिप्रेक्ष्य मे आत्म-विश्लेषण का अवसर देती है। इसका प्रारम्भ सामान्य चीजों जैसे—सहयोग के लिए तत्पर रहना, दैनिक अनुभवो से सीखना आदि को व्यक्तित्व का अभिन्न अग बना लेना चाहिए।

शांति शिक्षा की सीमाएं

इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि पिछले लगभग दो दशको से शाति शिक्षा के क्षेत्र मे महत्त्वपूर्ण कार्य हुए हैं। पवित्र उद्देश्यो तथा विशाल प्रयत्नो के बावजूद शाति शिक्षा का कार्यक्रम कई कारणो से बाधित हो रहा है, विशेषकर तीसरी दुनिया के परिप्रेक्ष्य मे।

● शाति शिक्षा के कार्यक्रम केवल कुछ उच्च वर्ग तक सीमित रहा है तथा यह मानव-समूहो तक पहुचने मे असफल रहा है।

● सम्पूर्ण शाति आन्दोलन बौद्धिक व सगठनात्मक—दोनो ही स्तरो पर यूरोप केन्द्रित रहा है। तीसरी दुनिया के व्यक्ति, सस्थाए तथा सगठन परिधि मे ही रहे हैं।

● परमाणु अस्त्र-शस्त्रो का खतरा तथा तीसरी दुनिया मे भूख, कुपोषण, अविकास, सामाजिक अन्याय, आतकवाद आदि अधिक महत्त्वपूर्ण रहे है। तथा राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इन समस्याओ से जूझने के प्रयत्न ही प्रमुख रहे है, शांति शिक्षा की तरफ लोगो व राष्ट्रो का ध्यान ही कम गया है।

● व्यक्तिगत स्तर पर भी शाति शिक्षा की कुछ समस्याए हैं। चूकि शाति शिक्षा अभी तक उच्च वर्ग तक पहुच पाई है जबकि ऐसे आधुनिकता वाले उच्च वर्गीय व्यक्ति अपने जीवन को भौतिकता की चकाचौंध के कारण खाली एव अर्थहीन पाते हैं।

● उपर्युक्त सीमाओं के बावजूद शाति शिक्षा को नकारा नहीं जा सकता है। इसकी आवश्यकता पूरे विश्व को तथा अभी है, भविष्य के लिए निर्णय पर इसकी आवश्यकता को नहीं छोड़ा जा सकता।

शांतिशोध क्या और क्यों?

एक समस्या पर किया जाने वाला अध्ययन उस तत्व की ओर इगित करता है जो अशाति के लिए जिम्मेदार है तथा जो व्यक्त और अव्यक्त हिंसा से लड़ने के लिए कदम निर्धारित करने मे सहयोग करे और समाजिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय विकास को आगे बढाये, ऐसे कार्य को शातिशोध कहा जा सकता है।

पाश्चात्य विचारक गुनार माइडल (Gunnar Myrdal) के अनुसार—"शाति शोध समाजविज्ञानो के विभिन्न क्षेत्रो में एक व्यवस्थित अध्ययन है जो सघर्ष, तनाव और युद्धो के बारे मे हमारी समझ और सोच में सुधार लाता है।"

उपर्युक्त दोनो अर्थो को देखे तो प्रथम परिभाषा ही पूर्ण मानी जाएगी क्योकि वहा केवल अशाति के लिए जिम्मेदार तत्त्वो पर नियन्त्रण पाने की बात ही नहीं है बल्कि सामाजिक विकास के लिए कदम निर्धारित करने की बात्त भी शामिल है क्योकि शाति युद्ध का अभाव मात्र नहीं है, शाति है समाज का समग्र विकास।

वर्तमान मे शातिशोध की अभिरुचि केवल शाति और युद्ध की समस्या तथा राजनैतिक सघर्षो तक ही सीमित है। शाति की नवीन परिभाषा के अनुसार युद्ध या हिसा राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सघर्षो मे सतत् विद्यमान है। क्योकि कुविकास (Mal development) गरीबी, आतरिक हिंसा और युद्ध मे एक निकट सबध देखा जा सकता है। इसलिए युद्ध विरोधी साधनो का विकास व खोज आवश्यक है। इन युद्ध विरोधी साधनो का उद्देश्य केवल युद्ध और हिंसा को समाप्त करना नहीं है अपितु सभी प्रकार की हिंसा और समाज के सभी स्तरो में व्याप्त सभी प्रकार के शोषण को समाप्त करना है। इसलिए शातिशोध का आन्दोलन वस्तुत. संपूर्ण व मूलभूत परिवर्तन का है। अहिंसा, हिंसा का विरोधी मात्र नहीं बल्कि सामाजिक परिवर्तन की सम्पूर्ण शक्ति है। इस प्रकार शातिशोध का विचार नये समाज निर्माण के लिए है। शांतिशोध में

शांति के इस नवीन संप्रत्यय को सम्मिलित करना होगा, जिससे समाज परिवर्तन के साथ अन्तर्राष्ट्रीय परिवर्तन व कलह-शमन भी संभव हो सके।

शांतिशोध का उपर्युक्त अर्थ व विचार इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि शांति शोध किसी विशेष अनुशासन या विषय (Discipline) से सबधित नहीं है, इसे किसी भी दिशा में विकसित किया जा सकता है जो दिशा शातिशोधकर्ता के मन में हो। इसलिए शातिशोध अन्तर्अनुशासित (Inter Disciplinary) है। उदाहरणार्थ भारत की समस्या को देखें—ये समस्याए केवल राजनैतिक नहीं हैं, आर्थिक भी है, सामाजिक भी है, सास्कृतिक भी है। किसी एक क्षेत्र के आधार पर हमारा अध्ययन गलत होगा। किसी भी समस्या को विभिन्न दृष्टिकोणो से देखकर उसके निदान के प्रयत्न हो तभी शाति सभव होगी। गाल्टुग का मानना है—शातिशोध मे हम विषय केन्द्रित क्षेत्र को समस्या केन्द्रित क्षेत्र मे बदलें जिससे समस्या की गहराई तक जाया जा सके और उसका निदान सभव हो सके। समस्या के निदान के लिए शाति शोध मे साधन-शुद्धि पर सदैव ध्यान रखा जाएगा।

"इसलिए शातिशोध समाज, राष्ट्र और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर मे योजनाबद्ध प्रयत्नों द्वारा अहिंसक तरीके से सामाजिक परिवर्तन लाने के लक्ष्य का अनुसरण करता है।"

गाल्टुंग ने अपने एक निबन्ध "ए क्रिटिकल डेफीनेशन ऑफ पीस" मे कहा है— "शातिशोध उन शर्तो की दिशा में समझने का प्रयास है जो हमे अन्तर्राष्ट्रीय और अन्तर्सामूहिक हिसा को रोकने मे योगदान करता है तथा राष्ट्रो और जनता के बीच सामजस्यपूर्ण तथा रचनात्मक सबधो के विकास मे सहायक होता है।"

अत गाल्टुग के अनुसार शातिशोध का व्यापक रूप से दो वर्गों मे विभाजन है—

1 संघर्ष-शोध।

2 शाति के लिए पहल।

उपर्युक्त दोनो क्षेत्रो से सबधित शोध शातिशोध है।

शांतिशोध के उद्देश्य (Objectives)

शातिशोध के उपर्युक्त विभाजन इसके उद्देश्यो को भी स्पष्ट करते हैं अर्थात् सघर्ष-शोध व शांति के लिए पहल इसका प्रमुख उद्देश्य हो सकता है। मुख्य

रूप से यह कहा जा सकता है कि समाज मे अशाति की जो स्थितिया हैं, सघर्ष या तनाव की जो स्थितिया हैं, उनके कारणों का पता लगाना तथा उनके निराकरण के उपाय सुझाना—यह शांति शोध का प्रमुख उद्देश्य होगा। दूसरा महत्त्वपूर्ण उद्देश्य होगा—समाज का समग्र विकास करना क्योंकि सामाजिक असमानताएं हिंसा का कारण बनती है इसलिए सबका समग्र विकास इसका एक और मुख्य उद्देश्य हो सकता है। इनके अतिरिक्त निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत शांतिशोध के उद्देश्यों को खोज सकते हैं—

● अहिंसक समाज रचना

शातिशोध का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है—अहिंसक व गरीबी मुक्त समाज की रचना। यद्यपि कोई भी समाज ऐसा नहीं है जो केवल हिंसा या केवल अहिंसा पर चल सके। जीवन निर्वाह के लिए हिंसा आवश्यक है पर समाज-रचना अहिसा के आधार पर हुई है। एक दूसरे के हित मे बाधा न डालने का समझौता सामाजिक जीवन का सुदृढ स्तम्भ है। पर आज के समाज मे जो उच्च-निम्न के भेद हैं, जो संघर्ष हैं उन्हे मिटाना आवश्यक है। अत शातिशोध का उद्देश्य होगा कि एक ऐसे समाज की रचना करे जिसमे हिंसा का वर्चस्व न हो तथा सबका समान विकास हो सके।

● निशस्त्रीकरण

शस्त्रास्त्रो के भयावह खतरे के बावजूद शस्त्रीकरण की होड जारी है। पारस्परिक अविश्वास व शक्ति सतुलन का सिद्धान्त इस समस्या को और अधिक गहरा बनाये हुए है। शाति स्थापना के लिए, आर्थिक कल्याण व पुननिर्माण के लिए, समस्याओ के शातिपूर्ण समाधान के लिए तथा आणविक सकट व पर्यावरण प्रदूषण से बचने के लिए निशस्त्रीकरण की अपेक्षा है। शातिशोध का उद्देश्य है—शस्त्रीकरण से होनेवाले सघर्षों का पता लगाकर उनके समाधान के रूप मे निशस्त्रीकरण को प्रस्तुत करना क्योंकि बिश्वशांति का एक मार्ग यह भी है।

● समुचित व सतुलित विकास के लिए

विश्व मे कुविकास की समस्या बडी जटिल है। एक ओर तो विकसित राष्ट्र हैं जहा भौतिक समृद्धि है, शक्ति है फिर भी वहा अशाति है। दूसरी तरफ अविकसित और पिछडे हुए राष्ट्र हैं जहा गरीबी अशाति का कारण बनी हुई है। अर्थात् असतुलित विकास विश्व शांति के लिए खतरा बन गया है।

शातिशोध का उद्देश्य है—इस कुविकास या असतुलित विकास के कारणों का पता लगाये तथा इसको रोककर समुचित व सतुलित विकास का मार्ग प्रशस्त करे।

● पारस्परिक सहयोग

राष्ट्रो की परस्पर अन्तर्निभरता इतनी अधिक बढ़ गई है कि पारस्परिक सहयोग के बिना कार्य नहीं चल सकता। और पारस्परिक सहयोग की कमी के कारण अनेक सघर्ष भी होते हैं। आज आवश्यकता है कि पारस्परिक सहयोग के क्षेत्र को बढ़ाये और प्रतिस्पर्धा व अविश्वास की भावना को छोडे। ये शस्त्रीकरण व अशाति के स्रोत हैं जबकि पारस्परिक सहयोग विश्वशाति का आधार है। शातिशोध का उद्देश्य है पारस्परिक सहयोग के क्षेत्रो की खोज करे व पारस्परिक सहयोग को बढाये।

● नव्य-उपनिवेशवाद पर नियन्त्रण

उपनिवेशबाद की समाप्ति के पश्चात् नव्य-उपनिवेशवादी नीतिया सामने आ रही है। शक्तिशाली राष्ट्र अविकसित राष्ट्रो के आर्थिक विकास मे इसलिए रुचि लेते है ताकि उनकी अर्थव्यवस्था पर नियन्त्रण स्थापित कर उस राष्ट्र को अपने इशारो पर चला सके। शाति शोध का यह उद्देश्य है कि उपनिवेशवाद के इस नवीन सस्करण के रूपो व कारणो का पता लगाकर निदान का मार्ग प्रशस्त करे।

● सरचनात्मक हिंसा

समाज की सरचना मे जो दोष है और जिनके कारण हिंसा होती है। शातिशोध का तो यह प्रथम उद्देश्य है कि वह समाज-व्यवस्था और समाज की जडो मे जो हिंसा के बीज छुपे हैं, उनका पता लगाकर सरचनात्मक हिंसा पर काबू पाये।

शातिशोध की आवश्यकता

निम्नाकित विषयो के अध्ययन के लिए शातिशोध की आवश्यकता है—

● विश्व के बडे धर्मों का शांति के प्रति क्या दृष्टिकोण है?

यह बडा महत्त्वपूर्ण है कि विश्वशाति का मार्ग धर्मों की शाति के प्रति दृष्टिकोण से जुडा हुआ है। विश्व मे अनेक ऐसे युद्ध हुए हैं जो धार्मिक आधारो पर लड़े गये है। ईराक-ईरान की इतने वर्षों तक चली लड़ाई सशक्त प्रमाण है और भी उदाहरण दिये जा सकते हैं। जैसे अफगानिस्तान की अशाति,

बगलादेश व पाकिस्तान की अशाति आदि-आदि। प्रारम्भ से धर्म और राजनीति के बीच सघर्ष चलता रहा है। आज इस बात की अपेक्षा है कि विभिन्न धर्मों का शाति के प्रति क्या दृष्टिकोण है इसक का पता लगाए तथा शाति का एक सर्वसम्मत आधार प्रस्तुत करे। इस हेतु शातिशोध की अपेक्षा है।

- **समसामयिक समाज में समाज परिवर्तन की क्या आवश्यकता है?**

चीन, रूस, फ्रांस आदि राष्ट्रो मे समाज परिबर्तन का इतिहास खूनी क्रांतियो का इतिहास है। समाज परिवर्तन के लिए इतना खून बहाया जाने के बावजूद भी वाछित परिवर्तन नहीं आ सके हैं। इसलिए हमे समस्या को दूसरे दृष्टिकोण से सोचना होगा। यदि हिंसा समस्या का समाधान नहीं हो सकता तो अहिंसक साधनो से समाज परिवर्तन की बात सोचनी होगी। इस दिशा में गांधी, विनोबा, जयप्रकाश नारायण व आचार्य तुलसी के प्रयास महत्त्वपूर्ण हैं। अहिंसक साधनो से समाज परिवर्तन के लिए जिन साधनो को काम में लिया जाता रहा है उनमे सत्याग्रह, स्वदेशी, अहिंसा-प्रशिक्षण, हृदय परिवर्तन आदि प्रमुख है। शातिशोध की आवश्यकता इसलिए है, वह यह पता लगाये कि सम-सामयिक समाज परिवर्तन की क्या आवश्यकता है? कैसे समाज-परिवर्तन किया जा सकता है और उसके क्या-क्या साधन हो सकते है?

- **शाति सगठनो की क्या भूमिका है?**

शातिशोध की आवश्यकता इसलिए भी है कि वह यह पता लगाये कि विश्व-शाति की दृष्टि से शाति सगठनो की क्या भूमिका हो सकती है? विश्व के अनेक राष्ट्रो मे कुछ सरकारी व गैर सरकारी सस्थान (Ngo's) हैं जो शाति के कार्यक्रमो मे सलग्न हैं। पर उन सगठनो के बीच न तो कोई तालमेल है और न कोई सचार। शातिशोध इस दिशा मे प्रयत्न करके कि किस तरह इन शाति सगठनो को एक विश्वव्यापी नेटवर्क मे जोडा जा सकता है और कैसे इनमे समन्वय स्थापित कर विश्वशाति के प्रयासो को गति दी जा सकती है?

- **शातिशिक्षण की क्या समस्याए हैं और क्या चुनौतिया हैं?**

शातिशोध की आवश्यकता शातिशिक्षण की समस्याओ और चुनौतियों के कारणो की खोज और निदान का मार्ग प्रशस्त करने के लिए भी है। गाल्टुग का विचार रहा है कि "शाति, शक्ति के समान बटवारे व ससाधनो के समान बटवारे के बिना कभी भी प्राप्त नहीं की जा सकती" यही विचार शाति शिक्षण

का आधार बना है। क्योकि शक्ति व ससाधनों का असमान बटवारा विश्व में अशांति का कारण बनता है। फोयरस्टीर का मत है कि शाति संस्कृति के पुनर्निर्माण से ही आ सकती है। व्यक्ति सस्कृति का एक तत्त्व है, इसलिए वह इसके एक अंश के रूप मे रहेगा पर समूह में भाईचारे या मानवता की भावना होगी। यह मानवता उत्पादक और सम्पूर्ण शिक्षा से ही आएगी जो स्वयं शांतिपूर्ण होगी। इस प्रकार शांति शिक्षण के कई आधार हो सकते हैं।

दूसरी तरफ युद्ध के लिए जैसा व्यवस्थित प्रशिक्षण है वैसा व्यवस्थित प्रशिक्षण शाति के लिए नहीं है, इसलिए भी शातिशिक्षण के लिए कई समस्याए और चुनौतिया हैं। शांतिशोध की आवश्यकता इसलिए है कि वह इन समस्याओ और चुनौतियो का पता लगाए।

उपर्युक्त समस्याओ के अलावा कुछ और महत्त्वपूर्ण समस्याए हैं जिनके लिए शातिशोध की आवश्यकता है—

1 अन्तर्राष्ट्रीय सबधों को पुनर्व्यवस्थित करने के लिए।

2 राजनैतिक सगठनो मे विशेष रूप से चुनाव के समय और नक्सलवादियो के सबधो के बीच हिंसा की रोकथाम के लिए।

3 आर्थिक ढाचे मे विशेषकर जमींदार और कृषक तथा पूजीपति व श्रमिक के सबधों के लिए।

4 सस्कृति के क्षेत्र मे जिसमे भाषा, अर्थ, शिक्षा आदि के कारण सघर्ष हो रहे हैं।

शांति अविभाज्य है

विश्व मे शाति के सम्बन्ध मे दो अवधारणाए प्रचलित हैं—पश्चिमी अवधारणा और पूर्वी अवधारणा। पश्चिमी अवधारणा के अनुसार युद्ध का अभाव मात्र शाति है। इसलिए पश्चिमी शाति कार्यकर्त्ता युद्धो को रोकने के लिए प्रयत्नशील हैं। उनका चितन है कि "युद्ध नहीं होगे तो अशाति भी नहीं होगी।" इस अवधारणा के अनुसार शाति का एक अर्थ है—सगठित और सामूहिक हिसा का अभाव और दूसरा अर्थ है सामजस्य (Harmony)। दो विरोधी पक्षो मे यदि सामजस्य स्थापित है तो वहा अशाति का कोई कारण नहीं। अर्थात् सामजस्य का अभाव भी अशाति का जनक है। पूर्वी अवधारणा शाति के इन अर्थों को नकारात्मक शाति (Negative Peace) की सज्ञा देकर सकारात्मक शाति (Positive Peace) के विचार को विकसित करती है। उनके अनुसार शाति सगठित और सामूहिक हिंसा के अभाव से कहीं अधिक है क्योकि राष्ट्रो और व्यक्तियो के बीच असमानता, गुलामी, शोषण आदि भी अशाति के महत्त्वपूर्ण कारण बनते हैं। पूर्वी अवधारणा के अनुसार समाज के हर पक्ष से सबंध होने के कारण शाति समग्र अवधारणा है। इसलिए मनुष्य व समाज के समग्र विकास की प्रक्रिया, योजनाबद्ध एव मानवोपयोगी समाज परिवर्तन ही वास्तविक शाति है और यह परिवर्तन भी सामजस्य के आधार पर नहीं अपितु समता के आधार पर होना चाहिए। अत शाति के लिए केवल प्रत्यक्ष और आरोपित हिंसा और शोषण का अभाव ही पर्याप्त नहीं अपितु सरचनात्मक हिंसा (Structural Violence) का अभाव भी जरूरी है। क्योकि आज हिंसा समाज की जड़ों तक पहुच गई है तथा मानव मस्तिष्क मे घर कर गई है, इसलिए हमें शाति को समग्रता से लेना होगा। युद्ध विरोधी प्रचार का उद्देश्य मात्र सगठित हिंसा को समाप्त करना नहीं हो सकता अपितु सभी प्रकार की हिंसा और समाज

के सभी स्तरों में व्याप्त सभी प्रकार के शोषण व असमानता को दूर करना भी है। इसलिए हमें यह मानना ही होगा कि समग्र शांति की अवधारणा आध्यात्मिक जगत् का जितना आधारभूत सत्य है उतना ही व्यवहार जगत् का यथार्थ व अनिवार्य तत्त्व भी है।

शाति समग्र है, अविभाज्य है—इस कथन की सिद्धि के लिए हम कम से कम दो प्रमाण प्रस्तुत कर सकते हैं—

1 अस्तित्ववादी प्रमाण।

2 कार्यकरण सबधी प्रमाण।

पहले हम अस्तित्ववादी तर्क को ले—अस्तित्व यदि साधन है तो शाति उसका साध्य है। अस्तित्व विविध आयामी हैं पर उसका लक्ष्य समग्र शाति है। प्रो० गाल्टुग के अनुसार अस्तित्व के पाच प्रकार हैं—प्रकृति, मानव, समाज, विश्व और सस्कृति। उनके अनुसार इन पाचो अस्तित्वो का साध्य भिन्न-भिन्न होते हुए भी परम साध्य के रूप में ये शाति की अपेक्षा रखते हैं—

प्रकृति का साध्य – परिस्थिति का सतुलन है

मानव का साध्य – बोधि प्राप्त करना है

समाज का साध्य – विकास है

विश्व का साध्य – शाति है और

सस्कृति का साध्य – पर्याप्तता है।

गहराई से विचार करने पर ये सभी तत्त्व परस्पर अन्तर्ग्रंथित दिखाई देते हैं। यदि हम इनको अलग-अलग करके देखे तो हम शाति को नहीं जान सकते। इसका कारण है—मनुष्य, विश्व मे घटित प्रत्येक घटना से प्रभावित होता है तथा प्रत्येक घटना को वह स्वय भी प्रभावित करता है। इसलिए हम किसी एक भी तत्त्व की अवहेलना करके शाति स्थापित नहीं कर सकते। उदाहरणत यदि प्रकृति का सतुलन ठीक नहीं होगा तो शेष चार तत्त्व भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहेगे। "प्रत्येक तत्त्व दूसरे तत्त्व की शाति पर निर्भर करता है", इस तथ्य को हम इस रूप मे भी कह सकते हैं कि सबकी शाति मे मेरी शाति निहित है। अस्तित्व के विभिन्न प्रकारों की परस्पर निर्भरता से

शांति की अखण्डता सिद्ध होती है। प्रो० गाल्टुग ने ठीक ही लिखा है—"जब हम शांति के बारे में चर्चा या विचार-विमर्श करते हैं तो इसका आशय इतना ही नहीं है कि शांति केवल राष्ट्रों के बीच में ही हो, बल्कि शांति तो समाज की रग-रग में, मानव जातियों में और यहां तक कि प्रकृति में भी शांति व्याप्त होनी चाहिए।"

कार्यकारण तर्क

हम पहले यह देखें कि शाति की पूर्वावस्था क्या है? तनाव व सघर्षों के अत को हम शाति की पूर्वावस्था के रूप में देख सकते हैं। वैयक्तिक स्तर से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के तनाव सघर्ष पैदा करते हैं तथा शाति को भग करते हैं। प्रश्न होगा तनाव किन कारणो से उत्पन्न होता है? क्या तनाव का एकमात्र कारण युद्ध ही है? निश्चित ही नहीं, गरीबी और असमान विकास भी तनाव के कारण हैं। एकमात्र गरीबी को भी इस तनाव् का कारण नहीं कह सकते। यदि ऐसा होता तो विकसित राष्ट्र जहा पैसे की कोई कमी नहीं है, अशात नहीं होते। इसलिए यह मानना होगा कि असमान विकास भी अशाति का एक कारण है। एक तरफ समृद्धि है दूसरी तरफ 87 करोड व्यक्ति पढ लिख नहीं सकते, 50 करोड व्यक्तियो के पास रोजगार नहीं, 13 करोड बच्चे स्कूल जाने में सक्षम नहीं, 45 करोड भूख व कुपोषण से पीडित हैं, एक करोड़ 20 लाख बच्चे प्रथम जन्मोत्सव से पहले ही खत्म हो जाते हैं। 2 अरब लोगों के पास पीने का पानी नहीं है 25 करोड व्यक्ति झुग्गी-झोपडियो मे रह रहे है। समृद्ध भी अशात है और गरीब भी अशात। समृद्ध अशात हैं क्योकि उन्हे सैनिक भय सता रहा है, सास्कृतिक विपन्नता उच्छृखलता पैदा कर रही है, समाज की टूटन रिक्तता बढा रही है, सदेह, भय, सत्रास, प्रदूषण उन्हे भविष्य के प्रति त्रस्त बनाए हुए है। गरीब अशात हैं क्योकि उसके पास भोजन नहीं है, वस्त्र और मकान नहीं है, शिक्षा और रोजगार नहीं है। यदि सघर्षों के कारण एक भी राष्ट्र अशात होता है तो दूसरा राष्ट्र अशाति से बच नहीं सकता। एक राष्ट्र की टूटन दूसरे की अशांति का कारण बन जाती है। यही कारण है कि आज अमेरिका जैसे समृद्ध राष्ट्र अविकसित राष्ट्रों के विकास के लिए प्रयत्न कर रहे हैं, उनके उत्थान के लिए मार्शल योजना जैसी कई योजनाओं

का निर्माण हो रहा है क्योंकि ऐश्वर्य की अट्टालिकाओ की ऊचाईयो से उन्हें अपनी कब्रो की गहराइया भी नजर आ रही हैं। इन कब्रों की गहराइयों को पाटे बिना उनका ऐश्वर्य ज्यादा दिनो तक सुरक्षित नहीं रह सकता।

वस्तुत हमें इस तथ्य को स्वीकार करना होगा—शांति अविभाज्य है, उसे खण्ड-खण्ड करके कोई भी शाति से नहीं रह सकता। इसलिए गाधी ने समग्र विकास की बात कही। जयप्रकाश नारायण ने सम्पूर्ण क्रान्ति को आवश्यक माना। सबका समग्र व हर क्षेत्र में समान विकास नहीं होगा तो शोषक और शोषित, शासक और शासित, पूजीपति और श्रमिक आदि दो वर्ग सदैव बने रहेगे और एक वर्ग की अशाति दूसरे वर्ग को भी अशात बना देगी। इसलिए यह आवश्यक है कि हम शाति को समग्र व अविभाज्य मानकर सम्पूर्ण समाज के समग्र व समान विकास के लिए प्रयत्न करे।

सामाजिक पुनर्निर्माण के लिए शिक्षा

मानव समाज प्राचीनकाल से आज तक निरन्तर विकसित और परिवर्तित होता चला आ रहा है। प्राचीन और मध्यकाल मे जब शिक्षा का प्रसार नहीं था, सामाजिक पुनर्निर्माण का कार्य समाज की विभिन्न सस्थाओ द्वारा किया जाता था। आज जब शिक्षा का पर्याप्त प्रसार हो गया है, तो शिक्षा को ही सामाजिक पुनर्निर्माण का प्रमुख साधन माना जाता है। डॉ० राधाकृष्णन् के शब्दो मे—"शिक्षा परिवर्तन व पुनर्निर्माण का साधन है। जो कार्य साधारण समाजो मे परिवार धर्म और सामाजिक एव राजनीतिक सस्थाओ द्वारा किया जाता था, वह आज शिक्षा द्वारा किया जा रहा है।"

भारतीय शिक्षा आयोग 1964-66 ने सामाजिक पुनर्निर्माण को आधुनिकीकरण से जोडा है, जिससे नवीन विचार, नवीन ज्ञान-विज्ञान, तकनीकी आदि द्वारा सामान्य जीवन की भौतिक परिस्थितियो मे परिवर्तन आ रहा है तथा समस्त समाज का जीवन परिवर्तित हो रहा है। सुख-सवृद्धि की सभावनाए अधिक प्रशस्त हो रही हैं। मानवीय तत्त्वो के कौशल, ज्ञान और गतिशीलता मे अन्तर आ रहा है जो सम्पूर्ण समाज के आर्थिक और सामाजिक ढाचे को प्रभावित करता है। समाज एक स्थिति से उठकर उन्नत स्थिति की ओर बढता है। इस प्रकार की दशा पुनर्निर्माण की दशा होती है।

सामाजिक पुनर्निर्माण क्या है?

सामाजिक पुनर्निर्माण हमारे सोचने-समझने और तौर-तरीको में ऐसा अन्तर है जो हमारे जीवन में आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, सास्कृतिक सभी पक्षो मे सुधारात्मक प्रभाव लाता है। राबर्ट हीन ब्रोनर ने सामाजिक पुनर्निर्माण को "महान आरोहण" की सज्ञा दी है। उनका मत है—"आर्थिक विस्तार के लिए अनिवार्य पूजी या संसाधनों की पूर्ति से ही परम्पराओं से जकडे हुए समाज का पुनरुद्धार नहीं हो सकता तथा इस रूपान्तरण के लिए

व्यापक सामाजिक कायापलट भी पर्याप्त नहीं है अपितु आदतों में आमूल परिवर्तन, समय, प्रतिष्ठा, धन और कार्य सबधी मूल्यो का परिवर्तन तथा स्वय के दैनिक जीवन के ताने-बाने को भी बदलकर सामाजिक पुनर्निर्माण को संभव बनाया जा सकता है।"

सामाजिक पुनर्निर्माण का सबध आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक व्यवस्था मे बदलाहट से लगाया जाता है। समाज की आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक व्यवस्था मे जब सुधारात्मक परिवर्तन होता है, तब समाज में नवीन प्रवृत्तियो का उदय होता है, नये प्रतिमान स्थापित होते हैं। पुरातन मान्यताए खण्डित होती हैं तथा विकास की सभावनाए प्रशस्त होती हैं। रेडोवान ने लिखा है—सभी विकासोन्मुख समाजों मे सारे सचेतन प्रयास इस हेतु किये जा रहे हैं कि वे ऐसी सस्कृति को जन्म दे जो तकनीकी युग और सार्वभौमिकता की मागो को पूरी कर सके।"

पुनर्निर्माण क्यों?

विश्व के विभिन्न समाजो का अध्ययन करे तो यह जानने को मिलेगा कि विश्व मे कुछ समाज ऐसे है जो बहुत अधिक विकसित है। यह विकास आर्थिक और भौतिक है। यहा सस्कृतियो का विनाश हो रहा है। परिवार, विवाह जैसी सामाजिक सस्थाए टूट रही हैं। व्यक्ति अकेलापन महसूस कर रहा है। भौतिक चकाचौंध उसे सुखशांति नहीं अपितु तनाव और सघर्ष दे रही है। दूसरी तरफ कुछ समाज ऐसे हैं जहा विकास नगण्य है। भुखमरी, बेकारी, गरीबी, कुपोषण इन समाजो को त्रस्त किये हुए है परिणमत ये समाज भी अशात हैं, सघर्षरत हैं। एक तरफ समृद्धि है एक तरफ गरीबी। यह कुविकास अशाति का कारण है, अत इस कुविकास को दूरकर सतुलित विकास के लिए इन दोनो ही समाजो के पुनर्निर्माण की आवश्यकता है। यह पुनर्निर्माण विश्व-बन्धुत्व, परस्पर सहयोग, सहअस्तित्व द्वारा ही हो सकता है, जिसके लिए शिक्षा की अह भूमिका होगी।

पुनर्निर्माण का आधार मनुष्य

सामाजिक विकास, परिवर्तन और पुनर्निर्माण का आधार मनुष्य ही है। मनुष्य अपनी इच्छाओ की पूर्ति के लिए ही आविष्कार करता है। जब इच्छाए असीम हो जाती हैं तब परस्पर सघर्ष अवश्यभावी हो जाती है। मनुष्य के जीवन की श्रेष्ठता इस बात मे है कि वह सामाजिक पुनर्निर्माण के अनुकूल आचरण

करना सीखे तथा स्वय को उन परिवर्तनों के अनुकूल ढाले। इस प्रकार मनुष्य पुनर्निर्माण प्रक्रिया मे दो प्रकार से भाग लेता है—एक तो समाज में आवश्यकताओ के अनुरूप परिवर्तन लाने का प्रयास करता है तथा दूसरे वह उत्पन्न परिवर्तन के अनुरूप स्वयं को ढालने का प्रयत्न करता है। अर्थात् परिवर्तन मनुष्य स्वयं लाता है तथा मनुष्य का अपना तदनुरूप आचरण ही उस परिवर्तन को लागू करता है।

सामजिक पुनर्निर्माण के लिए शिक्षा एक साधन

शिक्षा द्वारा अनेक देशों एव समाजों का पुनर्निर्माण किया गया है। इस हेतु निम्नलिखित तथ्य प्रस्तुत हैं—

1. भारत में अंग्रेजी शिक्षा के कारण सामाजिक पुनर्निर्माण

अग्रेजी शिक्षा के प्रवेश से भारत ने कई सदियो की कुम्भकर्णी निद्रा का परित्याग कर अपने समाज मे असाधारण आर्थिक, राजनीतिक सामाजिक आदि परिवर्तन किये। सामाजिक पुनर्निर्माण का श्रेय राजा राममोहन राय, टैगोर केशवचन्द्र सैन, स्वामी दयानन्द सरस्वती आदि महान् व्यक्तियों को प्राप्त हुआ। इन्होने सती प्रथा कन्या वध, बालविवाह आदि कुप्रथाओ का अत कर हमारे समाज की कायापलट कर दी। राजनैतिक पुनर्निर्माण का श्रेय दादाभाई नौरोजी, गोखले, गाधीजी व नेहरूजी को जाता है। यह सच है कि देश के शैक्षिक विचारो मे महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों के बिना आधुनिक भारत की सामान्य जागृति सभव नहीं होती।

2. भारत मे मूल्यपरक शिक्षा के कारण सामाजिक पुनर्निर्माण का प्रयास

प्राचीन भारत के निवासियो में धर्म और नैतिकता मे आस्था होने के कारण, न्याय, सहयोग, सहिष्णुता, सह-अस्तित्व, नि स्वार्थता आदि मूल्यो पर सदैव बल दिया गया था। उन्होने आध्यात्मिक मूल्यो की तुलना मे भौतिक मूल्यों को निम्नतर स्थान दिया था। पर स्वतत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत मे आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक क्षेत्रों मे स्वार्थ व शोषण की भावनाए प्रबल हो गई थीं तथा सहयोग व सहिष्णुता का स्थान अलगाव, घृणा व द्वेष ने ले लिया था। सामाजिक परिवर्तन और विघटन की इस प्रक्रिया में सबसे शक्तिशाली तत्त्व विज्ञान की शिक्षा का विकास था।

पर आज अलगाववाद, असहिष्णुता आदि को दूर कर सामाजिक पुनर्निर्माण के लिए मूल्यपरक शिक्षा पर बल दिया जा रहा है ताकि सर्वांगीण व्यक्तित्व

का विकास सम्भव हो सके तथा सहयोग व भ्रातृत्व पर आधारित समाज का पुनर्निर्माण हो सके।

3. जर्मनी में शिक्षा द्वारा सामाजिक परिवर्तन

सन् 1806 में "जीना के युद्ध" मे नेपोलियन द्वारा धूल-धूसरित कर दिये जाने के कारण जर्मन लोगो की देश-प्रेम, राष्ट्रीयता, बलिदान आदि भावनाओ पर घातक प्रभाव हुआ था। इन भावनाओ का पुनर्निर्माण करके अपने समाज को पूर्व रूप मे परिवर्तित करने के लिए शिक्षा का सहारा लिया गया था।

4. सोवियत संघ में शिक्षा द्वारा समाजवाद का व्यापक प्रचार

इसी तरह सोवियत सघ मे जार के सामन्तवादी विचारो को हटाकर समाजवादी समाज के पुनर्निर्माण के लिए शिक्षा का सहारा लिया गया था। समाजवाद को विश्वव्यापी बनाने के लिए भी सोवियत सघ ने शिक्षा का भरपूर सहारा लिया।

5. शाति शिक्षा द्वारा वर्तमान विश्व के कायापलट का प्रयास

वर्तमान मे विश्व के असन्तुलित विकास या कुविकास को खत्म करने, शस्त्रीकरण को रोकने तथा अहिंसक व शातिवादी विश्व समाज की रचना के लिए शाति शिक्षा व नि शस्त्रीकरण की शिक्षा का सहारा लिया जा रहा है। इस प्रकार समाज के पुनर्निर्माण मे शिक्षा एक महत्त्वपूर्ण साधन के रूप मे सामने आई है। भविष्य की राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय आकाक्षाओ के अनुरूप सामाजिक पुनर्निर्माण के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षा इस तरह की आयोजित की जाए कि वह बालको मे परिवर्तन व नवीन प्रवृत्तियो पर आलोचनात्मक ढग से विचार कर सकने की योग्यता दे।

सामाजिक पुनर्निर्माण हेतु दो आधार पर प्रयत्न करने आवश्यक हैं—

1 भौतिक ससाधनो का विकास व उनका समान वितरण

2. मानवीय ससाधनो का विकास व उनका पूर्ण उपयोग।

शिक्षा इन दोनों क्षेत्रो मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। व्यक्ति को नये मूल्य देने, उसकी प्रवृत्ति सोचने-विचारने के ढग और नये परिवर्तन के प्रति आस्था उत्पन्न करने का कार्य शिक्षा ही करती है। रूस मे क्रान्ति के बाद समाज के पिछडे ग्रामीण और परम्परागत स्थिति से उन्नत, विकासशील और आधुनिक समाज में बदलने का कार्य विद्यालयो को ही सौंपा गया था। कोठारी आयोग ने उचित ही कहा था—हमारा देश जिस प्रकार के समाजवादी ढग

का समाज निर्मित करना चाहता है, वह समाज व्यक्तिगत या समूहगत संकीर्ण निष्ठा व स्वार्थता के द्वारा नहीं अपितु राष्ट्रीय विकास के सभी घटकों के प्रति व्यापक निष्ठा व उसके प्रति उत्सर्ग से ही बन सकेगा और इस हेतु शिक्षा अह साधन होगी।"

सामाजिक पुनर्निर्माण कैसे करें?

सामाजिक पुनर्निर्माण निम्न दो तरीकों से किया जा सकता है—

1 संगठित व नियोजित रूप से धीरे-धीरे परिवर्तन लाना।

2 क्रांति अथवा आन्दोलन द्वारा एकाएक परिवर्तन लाना।

इन दोनो विधियों में प्रथम विधि उपयोगी एव सतोषजनक है जबकि दूसरी विधि घृणा, अत्याचार, हिंसा, अशाति उत्पन्न करेगी। 1688-89 की इग्लैण्ड की 1783 की फ्रांस की, 1917 की रूसी क्रान्तिया इसके प्रमाण हैं।

शिक्षा का सहयोग

योजनाबद्ध सामाजिक पुनर्निर्माण के लिए शिक्षा तीन प्रकार से सहयोग कर सकती है—

1 व्यक्तियो मे यह समझ विकसित की जाय कि वे अच्छी व उपयोगी परम्पराओ और व्यवस्थाओ का चयन कर सके तथा अनुपयोगी एव बुरी परम्पराओ तथा रूढियों को छोड सके।

2 व्यक्ति निर्भीक एव स्वतत्र होकर सामाजिक बुराईयों की आलोचना कर सके।

3 व्यक्ति योग्य बनकर सुनियोजित एव सुनिश्चित योजना मे सहयोग दे सके।

यद्यपि वर्तमान शिक्षा हमारे सामाजिक पुनर्निर्माण के स्वरूप को निश्चित करने में असफल रही है। प्रो० सचदेवा के शब्दो मे—"शिक्षा, जिसे सामाजिक व्यवस्था को नवीन रूप प्रदान करने में नेतृत्व करना चाहिए था, उसकी चाटुकार सहचरी के रूप मे कार्य करके सतोष का अनुभव कर रही है।" इसीलिए वर्तमान शिक्षा मे परिवर्तन की बात बहुत जोरों से की जा रही है। शिक्षा में आज मूल्यो का अकाल-सा पड़ गया है, इसी कारण विश्व कुविकास की समस्या से ग्रस्त है। वर्तमान शिक्षा मे मूल्यों का तथा अहिंसा एव शांति के तत्त्वों के समावेश से विश्व द्वारा चाहे जा रहे संतुलित सामाजिक पुनर्निर्माण को सभव बनाया जा सकता है।

कैसी हो 21 वीं शताब्दी की शिक्षा?

विश्व या समाज की समस्या वास्तव मे व्यक्ति की समस्या है। विश्व तभी शाति से रह सकता है, जब व्यक्ति शाति से रहने के लिए अपना मन बनाये। ऐसा तभी सभव हो सकता है जब व्यक्ति के शरीर, मन और भाषा के बीच समन्वय हो। शिक्षा की आवश्यकता व्यक्ति को यही प्रशिक्षण देने के लिए है। प्रचलित शिक्षा पद्धतियो ने यद्यपि कई सार्वजनिक उद्देश्यो की पूर्ति की है पर इसका मुख्य लक्ष्य समाज का सतुलित विकास और शिक्षा के ढाचे का सुदृढ़ीकरण होने की बजाय सर्वश्रेष्ठ शासक वर्ग का निर्माण रहा है, इसी कारण अभी तक लोक कल्याण नहीं हो पाया हे। यद्यपि मानव सभ्यता, विकास के कई सोपानो से गुजरी है पर यह केन्द्रीय दृष्टि अपरिवर्तनीय रही है। नौकरशाही, औद्योगीकरण, विज्ञान प्रबन्ध, सेना, राष्ट्रवाद समाजवाद योजनाबद्ध विकास—सबने इस प्रक्रिया मे भरपूर सहयोग किया है। व्यक्ति ने व्यक्ति का शोषण किया, शक्तिशाली व्यक्तियो द्वारा कमजोर लोगो पर अत्याचार हुए, पुरुषो ने स्त्रियो का तथा विभिन्न आयु वाले लोगो ने एक-दूसरे का शोषण किया है, उन पर शासन किया है। इतिहास से चली आ रही शिक्षा की इस व्यवस्था ने केवल शासक समाज की सेवा की है और हिंसा को बढावा दिया है।

योजनाबद्ध हिंसा आज की देन नहीं, बल्कि सदियो से चली आ रही है, इस तरह के बहुत से साक्ष्य प्राचीन इतिहास मे देखने को मिलते हैं। एक इटालियन यात्री ने भारत यात्रा का अपना अनुभव लिखते हुए कहा है—वह एक ब्राह्मण से मिला और सूर्यग्रहण के बारे मे जानकारी चाही। ब्राह्मण ने वैज्ञानिक विस्तार से उसे प्रामाणिक जानकारी दी। सयोगवश उसी समय एक अस्पृश्य व्यक्ति ने भी ब्राह्मण से वही जानकारी चाही। ब्राह्मण का उत्तर

था—राक्षस राहू सूर्य देवता को निगल जाता है और सूर्यग्रहण हो जाता है। जब इटालियन यात्री ने यह सब देखा तो पूछा—कौन सा उत्तर सही है? ब्राह्मण का जवाब था—जो उत्तर आपको दिया गया, वही सही है। ज्ञान सबके लिए नहीं है, सामान्य आदमी के लिए दूसरी शिक्षा है। प्राचीन भारत में स्त्री और अस्पृश्य को वेदाध्ययन का अधिकार नहीं था। अत शिक्षा अभ्यास के लिए नहीं वरन् शासक वर्ग के लिए है। ये शासक पूरे राष्ट्र के विकास को अकेले ही निगल लेते हैं। विकसित राष्ट्र इसी प्रकार की शिक्षा को महत्त्व देते रहे हैं। ग्रेट ब्रिटेन मे शिक्षा केवल उच्च वर्ग के लिए ही है। केवल 16% लोग ही उच्च शिक्षा प्राप्त करते हैं, इनमे से भी 80% लोग शारीरिक श्रम न करने वाले परिवारो से आते हैं यद्यपि ग्रेट ब्रिटेन में 98% साक्षरता है पर इनमे से 80% केवल बैनर की प्रथम पक्तियों को ही पढ सकते हैं। शिक्षा का यह एकाधिकार पद और धन के एकाधिकार से भी खतरनाक है। इससे बुरा क्या होगा कि एक छोटा समुदाय अपने विशेष ज्ञान के कारण पूरे समूह पर शासन कर रहा है। प्राचीनकाल की तुलना में आज शूद्रों की सख्या अधिक हो गई है। वैशिष्ट्य के बिना सामाजिक ज्ञान रखने वाले लोग समाज मे अविश्वसनीय हैं। अत मात्र विशिष्ट लोगो के पास ही शिक्षा व सत्ता का अधिकार है। उनके पास ही ऐसे मत्र हैं जो नियम उपनियम—आचार सहिताओ आदि का निर्माण करते हैं।

ज्ञान की यह सकीर्णता व्यक्ति को प्राकृतिक विवेक से दूर ले जा रही है तथा उसकी आतरिक प्रतिभा और विवेक शक्ति को नष्ट कर रही है। अत आज आवश्यकता है 21 वीं शताब्दी के लिए शिक्षा पर पुनर्विचार व पुनर्निर्माण की। यदि शिक्षा को रोजगार के साथ जोडा जाता है तो इसके परिणाम भी भयावह ही हैं। रोजगार प्राप्त व बेरोजगारों के बीच सघर्ष है। अनुत्पादक शिक्षित रोजगार प्राप्त व उत्पादक अशिक्षित स्वय रोजगार प्राप्त व्यक्तियो के बीच सघर्ष है। यह कहना मात्र धोखा है कि आज अनुत्पादक शिक्षित रोजगार व्यक्ति पूजी पर नियंत्रण स्थापित कर रोजगार उत्पन्न कर रहे हैं। यदि ऐसी ही स्थिति रही तो परिणाम खतरनाक भी हो सकते हैं।

प्रश्न है—तब हम क्या करें? कैसे हम नई शिक्षा नीति का निर्माण करें?

इस नई शिक्षा नीति के क्या लक्ष्य और उद्देश्य होगे? गाधी जी की भाषा मैं इस प्रश्न का समाधान है—हम किसी भी समाज का रख-रखाव करने की जगह शिक्षा के माध्यम से नए समाज तत्र का निर्माण करे जो अहिंसक समाज का नेतृत्व करे। ऐसी शिक्षा दलितो के उत्थान के लिए होगी, शक्ति को विकेन्द्रित करने के लिए होगी तथा समानता की सस्कृति के विकास के लिए होगी। सबके लिए समान अवसर का नारा आज अधिक सार्थक नहीं क्योकि समाज के विभिन्न वर्ग, जातिया बहुत अधिक असमान स्तर तक पहुच चुकी है। अत पिछडे वर्ग को कुछ अतिरिक्त लाभ देने होगे जिससे शिक्षा उन्हे समान स्तर पर ला सके। ऐसी शिक्षा स्व प्रकाशित करने वाली तथा मूल्य केन्द्रित होगी जिसका उद्देश्य डाक्टर, इजीनियर व प्रशासक देना नहीं अपितु इन लोगो मे वैसे गुण व मूल्य भी हैं या नहीं, यह देखना होगा। इस प्रकार की शिक्षा द्वारा परिवर्तित अभिवृत्तियो का विकास होगा, बौद्धिक परिपक्वता आएगी जिससे अहिंसक सस्कृति का निर्माण होगा। फोयरस्टीर ने ठीक ही कहा था—शाति केवल सस्कृति के पुनर्निर्माण से ही स्थापित हो सकती है। इस सस्कृति मे सामजस्यता व सेवा भावना पर बल दिया जाएगा। हिंसा व केन्द्रीयकरण की जगह सहभागिता व अहिसक भावना का विकास होगा। कार्ल मेनहीन ने ठीक ही कहा है—"हिंसक दृष्टिकोण को उपयुक्त शिक्षा के द्वारा रोका जा सकता है।'

गाधीजी से एक बार पूछा गया—आपकी शिक्षा का क्या उद्देश्य है? गाधीजी का उत्तर था—चरित्र निर्माण। मै साहस, शक्ति तथा कार्य करते समय स्वय को भूल जाने की योग्यता का निर्माण करना चाहूगा, जो साक्षरता से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। आज की शिक्षा हमे सब कुछ सिखाती है पर हमारे आतरिक अस्तित्व से परिचित नहीं करवाती। हम नहीं जानते कि हम अपनी इच्छाओ और स्वार्थों के कितने गुलाम है। हम दूसरो की सेवा करने की बजाय स्वय की महत्त्वाकाक्षाओ की पूर्ति क्यो करते हैं। क्यो हमारे पास अच्छाई और बुराई के बीच भेद करने का विवेक नहीं है। इसलिए सूचनाए एकत्र करना शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य नहीं अपितु मानवीय बदलाव ही इसका उद्देश्य हो सकता है। आइन्सृटीन ने भी कहा था—हमारे कार्यों मे नैतिकता आये यह

मानवता का महान् उद्देश्य है। संक्षेप मे हम 21 वीं शताब्दी के लिए शिक्षा के स्वरूप में निम्न तत्त्वों का समावेश मान सकते हैं।

1 साक्षरता न तो शिक्षा का प्रारंभ है न ही अंत।

2 बौद्धिक ज्ञान शिक्षा का एक पहलू है, इसका दूसरा पहलू है—इच्छाओं व भावनाओ को प्रशिक्षित करना तथा चरित्र निर्माण।

3 शिक्षा का व्यक्तिवादी मूल्य ठीक नहीं, व्यक्ति का विकास समाज के विकास के साथ जोडना चाहिए।

4 विज्ञान के योगदान को नकार नहीं सकते पर हमे अपनी आंतरिक शक्तियों के विकास के लिए अपनी आखे बन्द नहीं कर लेनी चाहिए।

शैक्षिक व्यय उपभोग है या विनियोग

शिक्षा का अर्थशास्त्र

पिछले कुछ वर्षों मे अर्थशास्त्र की एक नई शाखा का उद्भव हुआ, जिसे शिक्षा का अर्थशास्त्र कहा जाता है। इसके अन्तर्गत शिक्षा पर किये जाने वाले व्यय और उससे मिलने वाले लाभ का विवेचन किया जाता है। शिक्षा में अर्थशास्त्र के विकास मे जॉन वेजी, शुल्ज आदि अर्थशास्त्रियो की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् सम्पूर्ण विश्व मे शिक्षा के प्रसार का व्यापक दौर प्रारम्भ हुआ। विकास की इस तीव्र गति का कारण ज्ञान-विज्ञान का विस्फोट तथा उद्योग मे नवीन तकनीकी क्राति आना था। इसके परिणाम स्वरूप शिक्षा पर किये जाने वाले व्यय मे आशातीत वृद्धि हुई। 1960 मे जर्मनी मे राष्ट्रीय आय का 2 4 प्रतिशत शिक्षा पर व्यय होता था जो 1970 मे 4 4 प्रतिशत हो गया था। भारत मे भी जहा शिक्षा पर व्यय राष्ट्रीय आय का 2 प्रतिशत था वह बढ़कर 1975-76 मे लगभग 4 प्रतिशत हो गया तथा वर्तमान मे यह लगभग 6 प्रतिशत है। इस बढते हुए व्यय का क्या औचित्य है। इसका उत्तर शिक्षा का अर्थशास्त्र देने का प्रयत्न करता है। जब शैक्षिक क्षेत्र मे राष्ट्रीय सीमित-साधनो के इतने बडे भाग का उपभोग होता है, तब यह आवश्यक है कि शैक्षिक व्यय की भी अन्य क्षेत्रो मे विनियोजित धन-राशि के समान जाच की जाए। शैक्षिक निर्णय केवल सामाजिक एव राजनैतिक आधार पर अथवा अन्य विकसित देशो की शैक्षिक उपलब्धि की दृष्टि से लिये जाने उचित नहीं है, उनके आर्थिक पक्ष को भी समुचित महत्त्व दिया जाना आवश्यक है, जिससे राष्ट्र के सीमित साधनो का श्रेष्ठतम उपयोग हो सके।

शैक्षिक व्यय : उपभोग या विनियोग

शैक्षिक व्यय को उपभोग रूप माना जाए अथवा विनियोग रूप, यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। वस्तुओ और सेवाओ को दो वर्गों मे विभक्त किया जा सकता है—एक वह, जिसका लाभ उपभोक्ता तत्काल उठा सके तथा दूसरा वह, जिसका उपयोग दीर्घकालीन उत्पादन मे किया जा सके। प्रथम वर्ग

उपभोग कहलाता है दूसरा वर्ग विनियोग। शिक्षा एक दृष्टि से उपभोग की वस्तु है, क्योंकि उससे व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास होता है, दूसरी दृष्टि से शिक्षा एक विनियोग रूप प्रवृत्ति है क्योकि इसके द्वारा ऐसे शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों का उत्पादन होता है जो व्यक्तिगत धन कमाने की क्षमता प्राप्त करने के साथ-साथ देश की उत्पादन प्रक्रिया में सहायक होते है। उपभोग की दृष्टि से शिक्षा की आवश्यकता सामाजिक, सास्कृतिक एव राजनैतिक उद्देश्यो की पूर्ति हेतु उत्पन्न होती है और विनियोग के रूप में उसका प्रावधान मुख्यत उसकी उत्पादन क्षमता द्वारा निश्चित होता है।

शैक्षिक नियोजन द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् भी कुछ समय तक स्वतत्र रूप से होता रहा, उसका राष्ट्रीय विकास योजना से विशेष सबध नहीं था। शिक्षा और आर्थिक क्षेत्र के मध्य सर्वप्रथम सबध राष्ट्रीय विकास योजना के अन्तर्गत विभिन्न क्षेत्रों हेतु शिक्षित मानव-शक्ति की माग के कारण हुआ। शिक्षा प्रणाली मे अब यह भी अपेक्षा की जाने लगी कि वह वाछित सख्या में निर्धारित योग्यता के व्यक्ति निश्चित समयोपरान्त उपलब्ध करे। शैक्षिक विकास को राष्ट्रीय विकास का एक प्रमुख साधन माना जाने लगा और नियोजकगण शैक्षिक नियोजन और राष्ट्रीय विकास नियोजन के एकीकरण पर बल देने लगे।

अर्थशास्त्री यह मानने लगे कि आर्थिक विकास की उपलब्धि प्रमुखत भौतिक साधनो से इतनी नहीं होती जितनी तकनीको द्वारा मानवीय साधनो को उन्नत करने से। मानवीय पूजी के विकास के आधार हैं—शिक्षा, व्यवसायिक प्रशिक्षण, स्वास्थ्य सबधी सेवाए, पौष्टिक आहार आदि। इन पर किये गये व्यय से मानवीय पूजी उन्नत होती है, जिससे देश अपनी आय मे स्तर को उन्नत करने मे समर्थ होता है और आर्थिक विकास की गति मे तीव्रता आती है।

जॉन वेजी, शुल्ज आदि अर्थशास्त्रियो ने आर्थिक विकास व शैक्षिक व्यय के बीच घनिष्ट सहसबध पाया है। ब्रिटेन मे सन् 1900 मे शैक्षिक बजट राष्ट्रीय उत्पादन का 2 प्रतिशत था जो 1958 में बढकर 4 प्रतिशत हो गया, यही अनुपात आर्थिक विकास की गति का भी देखा जा सकता है। वेजी का निष्कर्ष है—जैसे-जैसे धन बढता जाता है, वैसे-वैसे शिक्षा पर किया जाने वाला व्यय उपभोग माना जा सकता है। दूसरी ओर शिक्षा पर जिस मात्रा में व्यय किया जाता है, उससे कई गुना अधिक प्रतिफल शीघ्र ही मिलने लगता है, इस दृष्टि से यह विनियोग भी है।

अर्थशास्त्र में पूजी को उत्पादन का साधन माना जाता है और यह पूंजी

स्वय भी एक उत्पादित वस्तु अथवा सेवा होती है। यह तीन प्रकार की मानी गई है—भौतिक पूजी, जैसे फैक्टरी मे मशीन या खेत मे ट्रैक्टर आदि, मानवीय पूंजी जैसे, शिक्षा प्राप्त मनुष्य तथा वित्तीय पूजी। शुल्ज ने मानवीय पूजी शब्द का प्रयोग उच्च शिक्षा प्राप्त मानवीय पूजी से किया है। राष्ट्र की जनसख्या में जो सम्भावित शक्ति छिपी है, उसे विकसित करने हेतु जो व्यय किया जाता है, उसको अब केवल उपभोग या समाज कल्याण के प्रकार का व्यय नहीं माना जाता है। रूस, अमेरिका, जर्मनी तथा जापान मे मानवीय पूजी की कार्य कुशलता उन्नत करने से वहा के उत्पादन मे महत्त्वपूर्ण वृद्धि हुई है। इस दृष्टि से शिक्षा दीर्घकालीन विनियोग भी है।

मानवीय पूंजी में विनियोग

देश का आर्थिक विकास केवल प्राकृतिक साधन और भौतिक पूजी पर आधारित नहीं बल्कि उसका वास्तविक कारण मनुष्य है। द्वितीय विश्वयुद्ध मे विध्वसित देश, जैसे—जर्मनी एव जापान ने थोडे ही समय मे अपनी अर्थव्यवस्था को पुन स्थापित कर लिया क्योकि वहा की मानवीय पूजी काफी उन्नत थी। इसलिए शिक्षा की सफलता अन्ततोगत्वा उसके द्वारा उत्पादित पुरुषो व स्त्रियो के सास्कृतिक स्तर, उनकी व्यवसायिक निपुणता तथा उनके चरित्र पर निर्भर करती है।

शिक्षा के परिणामस्वरूप मनुष्य ज्ञान एव कुशलताए प्राप्त करता है और ये एक प्रकार की पूजी है जो शिक्षा पर किये गये विनियोग का परिणाम है। अर्जित ज्ञान तथा कुशलताओ का आर्थिक मूल्य होता है क्योकि ये तकनीकी दृष्टि से उन्नत राष्ट्रो की उत्पादन उच्चता के प्रमुख कारण हैं। शिक्षा प्रणाली को राष्ट्रीय विकास से सबधित करने का अर्थ है—शिक्षा के परिणामस्वरूप व्यक्ति की उत्पादन क्षमता मे वृद्धि।

प्रश्न उठता है कि हम मानवीय विनियोग की मात्रा का किस प्रकार अनुमान लगाए तथा शैक्षिक व्यय के उपभोग और विनियोग के मध्य किस प्रकार भेद करें। यह व्यय तीन प्रकार से हो सकता है— 1 वह व्यय जो केवल उपभोक्ता की सतुष्टि से सबधित हो और किसी प्रकार की व्यक्ति की क्षमताओ मे वृद्धि न करे, शुद्ध उपभोग प्रकार का व्यय है। 2 जो व्यय मानव क्षमताओ को उन्नत करता है और जो उपभोक्ता की सतुष्टि से सबधित नहीं है, शुद्ध विनियोग है। 3 जिस व्यय का प्रभाव दोनो प्रकार का होता है वह अशत उपभोग और कुछ अश में विनियोग कहलाता है।

मानवाधिकार
और
विश्वशांति

मानवाधिकार और विश्वशांति

समाज विकास के साथ एक विचार जिसे हम "मानवाधिकार" के नाम से जानते हैं पिछले लगभग 800 वर्षों से विकसित होता रहा है। सर्वप्रथम सन् 1215 मे इग्लैंड के राजा जॉन ने मानव अधिकारो पर पहला घोषणा-पत्र सर्वमान्य कानून बनाने की दृष्टि से जारी किया था। तत्पश्चात् पुनः ऐसे ही प्रयास 15 वीं सदी मे फ्रास और इग्लैंड में हुए। मानवाधिकार के आधुनिक सिद्धान्त के जन्मदाता एच जी वैल्स थे जिन्होने विश्व नागरिको के अधिकारो व कर्तव्यों पर एक घोषणा-पत्र जारी करते हुए कहा था कि "प्रत्येक मनुष्य को जीने का अधिकार है, अल्पसख्यको के सरक्षण का अधिकार है, ज्ञान प्राप्ति का अधिकार है, विचारो व उपासना की स्वतत्रता का अधिकार है, कार्य करने का अधिकार है, व्यक्तिगत सम्पत्ति रखने का अधिकार है, व्यक्तिगत समृद्धि का अधिकार है, अहिंसा से मुक्ति का अधिकार है, कानून बनाने का अधिकार है तथा वे समाज के प्रति उत्तरदायी हैं।" वैल्स की इन्हीं धाराओ पर एक अन्तर्राष्ट्रीय कमेटी द्वारा विचार-विमर्श करने के पश्चात् इसका अन्तिम रूप नवनिर्मित सस्थान सयुक्त राष्ट्र द्वारा स्वीकार कर लिया गया तथा 10 दिसम्बर 1948 को पूरे विश्व मे ये लागू कर दी गई। उसी दिन से 10 दिसम्बर मानवाधिकार दिवस के रूप मे मनाया जाने लगा।

मानवाधिकारो को दो कालो मे विभक्त किया गया—युद्धकाल के मानवाधिकार एव शातिकाल के मानवाधिकार।

(1) युद्धकाल के मानवाधिकार—

युद्धो के कानून बनाने के लिए दो विश्व प्रसिद्ध सम्मेलन हुए हैं—हेग सम्मेलन और जेनेवा सम्मेलन। हेग सम्मेलन मे सर्वप्रथम यह प्रस्ताव पारित हुआ कि युद्धकाल मे युद्धरत राष्ट्रों का शत्रु को नुकसान पहुचाने का अधिकार असीमित नहीं है। जबकि जेनेवा कानून लड़ने वाले तथा असैनिक

(नागरिक) दोनों के प्रति मानवीय व्यवहार सुनिश्चित करने के उद्देश्य से प्रेरित है। हेग कानून मे हथियारो पर प्रतिबध लगाने की बात ही सम्मिलित है पर इस सदर्भ में अब तक किये गये प्रयास असफल ही रहे हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध में इस प्रथागत कानून को भी काफी धक्का लगा था जिसके अनुसार सैनिक तथा असैनिक व्यक्तियो के बीच भेद किया गया था।

इस विश्वयुद्ध ने नागरिक बस्तियों पर आक्रमण कर सर्वांगीण युद्ध के सिद्धान्त को जन्म दिया था। रेडक्रास इस सिद्धान्त के विरुद्ध लडता रहा। इन्स्टीट्यूट दे द्रोइन इटरनेशनल ने कहा कि समग्र युद्ध के सिद्धान्त को स्वीकार भी कर ले तो भी काफी असैनिक लोग रह जाते हैं जैसे अशक्त, बूढ़े, गर्भवती स्त्रिया, बच्चे, बीमार-घायल इन पर तो आक्रमण नहीं किया जाना चाहिये। इस प्रकार इस सस्थान ने मानव सभ्यता के प्रभात मे मानवता की सर्वप्रथम कानून-संहिता के निर्माता मनु के इन शब्दो का समर्थन किया कि सशस्त्र सघर्ष मे उसे नहीं मारा जाना चाहिये जो सो रहा हो, नग्न हो और जो शस्त्रहीन हो। इन प्रयासो का सुफल तब सामने आया जब 19 दिसम्बर 1968 को असैनिक नागरिको के विरुद्ध हमले पर रोक लगाई गई। सभी राष्ट्र इन नियमो का पालन करे इस हेतु सयुक्त राष्ट्र ने रेड क्रॉस को उत्तरदायित्व दिया।

(2) शांतिकाल के मानवाधिकार

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय ने शातिकाल मे मानवतावाद के महत्त्व पर बल देते हुए कहा है—"वह कानून जो व्यक्ति की गरिमा को सुनिश्चित करता है, उसकी रक्षा के लिए सदैव तत्पर है तथा उसके कल्याण व प्रगति को उच्चतम सीमा तक ले जाने को सभव बनाता है उस कानून को शातिकाल में भी स्वीकृत किया ही जाना चाहिये।" वस्तुत देखा जाए तो युद्ध से अधिक शातिकाल में मानवता की विचारधारा सर्वोपरि है। सयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद (3) मे कहा गया है—"विश्व की आर्थिक, सामाजिक, सास्कृतिक या मानवतावादी समस्या के समाधान के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त किया जाए तथा जाति, भाषा, लिग या धर्म का भेद किए बिना समस्त लोगो के लिए मानवाधिकारो एव आधारभूत स्वतंत्रता के सम्मान को प्रोत्साहन दिया जाए।

इसी आधार पर मानवाधिकार आयोग ने नरसहार पर रोक, जातिगत

भेदभाव का निवारण, शिक्षा में भेदभाव का निर्धारण, महिलाओं की स्थिति को सम्मानजनक बनाने, नागरिकताहीन व्यक्तियों व शरणार्थियो की स्थिति सुनिश्चित करने, दासता, व्यक्तियों के क्रय-विक्रय को समाप्त करने तथा रोजगार देने आदि के लिए विश्व समुदाय से अपील की।

1977 में महासभा ने कहा—"आर्थिक-सामाजिक दृष्टि से भी सभी मानवों को समान अधिकार है इसलिए विश्व के संसाधनों का उपयोग भी विश्व समुदाय के लिए हो, न कि मात्र कुछ राष्ट्रों के लिए" क्योंकि मानव को अपने अस्तित्व का समान अधिकार है।

अतएव इस दृष्टि से युद्धकालीन और शांतिकालीन मानवाधिकार अविभाज्य एव अतर सम्बन्धित हैं और ठीक इसी तरह मानवाधिकार, निशस्त्रीकरण और शाति भी। मानवता को यदि जीवित रखना है तो हमें शातिकाल के मानवाधिकारो पर अधिक बल देना होगा, पर इसका अर्थ यह नहीं है कि हम युद्धकाल के मानवाधिकारो का निषेध कर रहे हैं।

विश्व शांति के लिए आवश्यक है मानवीय गरिमा का आदर

लोकतंत्र का प्रथम आदर्श है—व्यक्ति की गरिमा का आदर करना

लोकतान्त्रिक दर्शन अनेकतावादी है और वह प्रत्येक व्यक्ति को बेजोड़ मानता है। लोकतत्र का विश्वास है कि प्रत्येक व्यक्ति विलक्षण है। व्यक्तित्व का समादर तथा उसका विकास न केवल उन्नति के लिए आवश्यक है, अपितु समाज के लिए भी आवश्यक है। व्यक्ति अपने अद्वितीय व्यक्तित्व द्वारा समाज को अनुपम योगदान कर सकता है। समाज व राष्ट्र मे अनेक ऐसे व्यक्ति होते रहे है, जिन्होने अपने व्यक्तित्व से न केवल समाज को, न केवल राष्ट्र को बल्कि विश्व को प्रभावित किया है। गाधी, मार्टिन लूथर किग आदि व्यक्तियो ने पूरे समाज व राष्ट्र की दिशा को ही बदला है। इसी प्रकार से अनेक ऐसे व्यक्ति इतिहास मे हो गये है जिनके अनुपम योगदान को आज भी यह विश्व याद करता है। लोकतत्र की यह मान्यता है कि ऐसे व्यक्तित्व का विकास हर व्यक्ति कर सकता है, उसे इसकी पूर्ण स्वतत्रता है, इसलिए हमे मानवीय गरिमा का आदर करना ही चाहिए।

राज्य व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति की भागीदारिता

लोकतत्र का यह भी विश्वास है कि प्रत्येक व्यक्ति उच्चतम पद पर पहुचने का अधिकारी है तथा राज्य शासन मे प्रत्येक व्यक्ति का हिस्सा है। इस दृष्टि से भी मानवीय गरिमा व व्यक्तित्व का आदर अपेक्षित है। प्रत्येक व्यक्ति क्षमता के आधार पर समान है, पर उन क्षमताओ के विकास का तारतम्य हर प्राणी में अलग-अलग होता है। इस दृष्टि से देखा जाए तो लोकतत्र का उपरोक्त विश्वास और भी अधिक पुष्ट होता है। प्रत्येक व्यक्ति मे यह सामर्थ्य है कि वह राष्ट्र के उच्चतम पद पर पहुच सकता है, अपेक्षा है अपने सामर्थ्य को निरावरण करने की। व्यक्ति की गरिमा को स्वीकार करने से ही राष्ट्र के

शासन में उसकी भागीदारिता को भी स्वीकार किया जा सकता है अन्यथा विश्व में आज भी अनेक राष्ट्र हैं जहां मानवीय गरिमा का खुलकर विरोध होता है तथा जहां मानवता सिसकती है और राष्ट्र शासन में हिस्सा लेना तो उन लोगों के लिए एक स्वप्न ही होता है। इसलिए विश्वशांति व स्वस्थ लोकतत्र के लिए भी हमे मानवीय गरिमा व व्यक्तित्व को आदर देना होगा।

व्यक्ति का विकास स्वयं के पुरुषार्थ के कारण

लोकतत्र में व्यक्ति जो कुछ है, अपने स्वय के कारण है, न कि वश परम्परा, जाति, धर्म अथवा अन्य किसी बाह्य कारण के फलस्वरूप। व्यक्ति जो कुछ बनना चाहता है, अपने प्रयत्न तथा पुरुषार्थ से बन सकता है, अतः इनकी शिक्षा मे भी अध्यवसाय, स्वावलम्बन, धैर्य, आत्म-विश्वास आदि गुणों के विकास पर जोर दिया जाता है। आर्थिक गुणो की दृष्टि से परिश्रम, श्रम-निष्ठा, आलस्य के प्रति घृणा आदि भावो को विकसित किया जाता है। राजनैतिक दृष्टि से लोकतत्र के आदर्शों के प्रति निष्ठा, कर्तव्य तथा अधिकारो के प्रति समर्पण आदि भावो को जागृत किया जाता है। इन गुणो के विकास के लिए सार्वभौम शिक्षा की व्यवस्था की जाती है, जिससे कि प्रत्येक बालक की विकास-सबधी सभावनाओ का पता लगाया जा सके। इन सभावनाओ के आधार पर ही व्यक्ति अपना निर्माण स्वय करता है। इसलिए भी व्यक्ति की गरिमा का आदर अपेक्षित है।

काट के मानवीय गरिमा व व्यक्तित्व के प्रति आदर से संबंधित विचार

जर्मन दार्शनिक काट ने मनुष्य के व्यक्तित्व की स्वतत्रता और उसके सम्मान से सबधित एक महत्त्वपूर्ण सूत्र दिया है। उनका यह सूत्र लोकतत्र का प्राण है—"व्यक्ति को सदा ही साध्य समझा जाना चाहिए, किसी साध्य का साधन नहीं।" उन्होने स्पष्ट रूप से कहा है—"इस प्रकार कार्य करो कि स्वय तुम में तथा दूसरो मे निहित मनुष्यता साधन मात्र न रहकर सदैव अपने आप मे साध्य बनी रहे।" काट का यह नियम बतलाता है कि हमे स्वय अपनी तथा दूसरो की स्वतत्रता एव प्रतिष्ठा का पूर्ण सम्मान करना चाहिए। इसके अनुसार हमे अपने आपको केवल इच्छाओ की तृप्ति का तथा अन्य व्यक्तियो को केवल अपनी इच्छा तृप्ति का साधन मात्र कदापि नहीं मानना चाहिए।

बौद्धिक प्राणी होने के नाते प्रत्येक मनुष्य का अपना स्वतत्र व्यक्तित्व तथा गरिमा होती है। इसे अपनी इच्छाओ की तृप्ति के लिए कुचलने का किसी

को अधिकार नहीं है। इसके अतिरिक्त किसी व्यक्ति को यह अधिकार भी नहीं होना चाहिए कि वह दूसरों की इच्छाओं को तृप्त करने के लिए स्वयं अपने आपको साधन बनाकर अपने गौरव एव स्वतंत्र व्यक्तित्व को नष्ट कर दे। इस प्रकार कांट का यह दर्शन हमे अपनी तथा अन्य सभी व्यक्तियों की मनुष्यता का सम्मान करने के लिए प्रेरित करता है।

बर्टण्ड रसल व मानवीय गरिमा

बर्टण्ड रसल ने कहा था—चूकि मानव-प्रगति के मार्ग मे एकतत्रीय सत्ता विविध रूपो मे सदैव बाधक रही है इसलिए मानव जाति के लिए उसकी वैयक्तिक स्वतत्रता व गरिमा के आदर की सर्वाधिक आवश्यकता रही है। साम्यवाद व फासीवाद इसलिए उपेक्षणीय है क्योकि वे वैयक्तिक स्वतत्रता और व्यक्ति की गरिमा को महत्त्व नहीं देते। रसल ने यह भी कहा कि हम तब तक सत्य पर नहीं पहुच सकते जब तक कि मानवीय गरिमा व व्यक्तित्व को समुचित आदर नहीं दे। क्योकि इसके अभाव मे हमे स्वतत्र विचार एव तर्क प्राप्त हो ही नहीं सकते। मानवीय गरिमा व व्यक्तित्व को समुचित सम्मान देने का अर्थ है—व्यक्ति की रचनात्मक कार्य शक्ति को प्रेरित करना। रसल ने कहा कि जहा एक व्यक्ति दूसरे का शोषण करता हो, एक का पेट भरा व अन्यो का खाली हो तो ऐसी परिस्थितियो मे मानवीय स्वतत्रता का कोई औचित्य नहीं है।

विश्वशांति और मानवीय गरिमा

काट और रसल के विचारों के सन्दर्भ मे यदि वर्तमान परिस्थितियो पर चिन्तन करे तो हमें यह ज्ञात होगा कि विश्व की अशाति का मूल कारण मनुष्यता को साधन मान लेना है। अनेक विकसित राष्ट्रो ने अपनी आवश्यकताओ व इच्छाओ की पूर्ति के लिए मानवीय गरिमा का तिरस्कार किया है तथा अनेक ऐसे भूखे-नगे लोग हैं जिन्होने अपनी क्षुधा तृप्ति के लिए अपने मानवीय गौरव और व्यक्तित्व को इन तथाकथित विकसित राष्ट्रो के हवाले कर दिया है। दक्षिणी अफ्रीका, लेटिन अमेरिका के देश एव अनेक इस्लामी राष्ट्र इसके सशक्त उदाहरण रहे हैं। मानवीय गरिमा को छीनने या उसे सौंप देने के कारण ही आज विश्व मे कुविकास व नव्य उपनिवेशवादी धारणाओ को बल मिला है।

मानवता के प्रति गरिमा कभी भी दूसरो की इच्छाओं की पूर्ति के

साधन बनने की मनाही नहीं करती यदि वह कार्य कर्तव्य चेतना से प्रेरित होकर किया जाय। पर जब मनुष्य विवशतावश अपने आपको अथवा दूसरों को साधन मात्र मान लेता है और स्वय विवश होकर दूसरों की इच्छाओं की पूर्ति करता है अथवा अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए अन्य व्यक्तियों को विवश करता है तब मानवीय गरिमा खतरे में पड़ जाती है। इसी आधार पर दासता, शोषण, धोखा, बलात्कार, हत्या आदि अनैतिक बनते हैं। क्योंकि इन सबमें मानवीय गरिमा का स्पष्टत अनादर होता है तथा दुष्कर्म करने वाला व्यक्ति या राष्ट्र दूसरो को अपनी इच्छाओ की तृप्ति का साधन मात्र मान लेता है।

मानवीय गरिमा और व्यक्तित्व के आदर के पहले आत्म-तुला का भाव आवश्यक

मनुष्य जाति एक है—यही मानवीय गरिमा का आधार हो सकता है। इस सिद्धान्त की स्वीकृति के पश्चात् किसी के अधिकारों का हनन, किसी को मारना, कष्ट पहुचाना, शोषण करना, तिरस्कार करना क्या स्वय को मारने, सताने का कष्ट पहुचाने का प्रयत्न नहीं है। जैन आगमो ने स्पष्ट घोषणा की है—पुरुष! जिसे तू हनन योग्य मानता है, जिसे तू परिताप योग्य मानता है, वह तू ही है। इस आत्मतुला की भूमिका पर ही मानवीय गरिमा का आदर पुरस्कृत हो सकता है। जाति, धर्म, वर्ग, वर्ण, प्रान्त, राष्ट्र, सत्ता आदि भेदो को यथार्थ व मुख्य मानकर पारस्परिक प्रेम, सद्भाव, विश्वास और न्याय की हत्या मानवीय मूल्यो की हत्या है, मानवीय गरिमा का अपमान है। इन आरोपित भेदो को वास्तविक मानकर किसी को हीन या शोषण योग्य या साधन मानना स्वय की ही हीनता है। ये भेद प्रकृतिगत नहीं हैं बल्कि मनुष्यों द्वारा ही निर्मित हैं। अत यदि हम हर मनुष्य/हर प्राणी को आत्मवत् समझे तो मानवीय गरिमा व व्यक्तित्व के प्रति आदर सहज ही घटित होगा।

भारतीय और पाश्चात्य चिन्तन में मानवीय गरिमा

गीता, जैन, बौद्ध आदि भारतीय चिन्तन तथा यूनानी व पाश्चात्य चिन्तन में मानवीय गरिमा के प्रति आदर की बात को स्वीकारा गया है। यूनानी दार्शनिक प्रोटोगोरस ने कहा है—मनुष्य सभी चीजों का मापदण्ड है। बाईबिल में भी मानवीय गरिमा को इस रूप में बतलाया गया है—विश्राम के दिन मनुष्य के लिए बने हैं न कि मनुष्य विश्राम के दिनों के लिए। गांधीजी ने मानवीय गरिमा को स्वीकार करते हुए कहा है—सभी मनुष्यों का समान आदर हो, इससे ही

शोषण, अस्पृश्यता जैसी महामारियों का शमन हो सकेगा। कांट और रसल के विचारों को तो हम देख ही चुके हैं। गीता, जैन आदि वैदिक व श्रमण धाराएं मनुष्य की गरिमा को स्वीकार करती हैं और कहती हैं—सभी मनुष्य अपना स्वतंत्र विकास कर सर्वोच्च शिखर पर पहुंच सकते हैं।

अत. मानवीय गरिमा व व्यक्तित्व का सम्मान केवल लोकतान्त्रिक मान्यताओं के लिए ही सार्थक नहीं है बल्कि विश्व में अशाति का कारण असमानता को दूर करने के लिए तथा मानवीय गरिमा की पुन. प्राप्ति के लिए ही सयुक्त राष्ट्र ने मानवाधिकार आयोग की स्थापना की है। यह सही है कि मानवता के प्रति आदर न होने से तथा मनुष्य को अपनी स्वार्थ पूर्ति का साधन समझ लेने से ही आज विकसित व विकासशील व अविकसित राष्ट्रो के बीच की खाईया चौड़ी हुई हैं तथा इसी के परिणामस्वरूप रगभेद, जाति भेद, नव्य उपनिवेशवाद आदि कुरीतियो का सूत्रपात हुआ है। अत विश्वशाति के लिए अपेक्षा है कि हमारी शिक्षा ऐसी हो जो मानवीय गरिमा के प्रति आदर सिखलाये तथा व्यक्तित्व की स्वतत्रता मे विश्वास करे।

विश्व नागरिकता और नये विश्व समाज की आवश्यकता क्यों?

पिछले दो विश्व युद्धों ने मानवता के सहार का जो भयावह रूप प्रस्तुत किया है, उससे यह अनायास ही सोचना पड़ता है कि मानवता को यदि सुरक्षित रखना है तो उसे अनिवार्य रूप से युद्ध के संकट से बचाना होगा। विश्व को सुन्दर व सुखमय जीवन जीने के योग्य बनाना है तो इसे युद्ध की सभावनाओं से बचाना होगा। सम्पूर्ण विश्व एक बन्धुत्व के सूत्र में बधे और प्रत्येक व्यक्ति भौगोलिक, देशीय, जातीय, धार्मिक आदि सकीर्ण मान्यताओं से ऊपर उठकर सम्पूर्ण मानव जाति के प्रति सद्भाव रखे, तब ही विश्व शांति स्थापित हो सकती है। विश्व शाति व विश्व नागरिकता की आवश्यकता इसलिए भी है कि आज का विश्व अत्यधिक सीमित होता जा रहा है। आवागमन के साधन, सचार की सुविधा आर्थिक अन्तार्श्रितता, तकनीकी आदान-प्रदान आदि विश्व नागरिको तथा राष्ट्रो को एक-दूसरे के निकट ला रहे हैं, इसलिए आचार्य विनोबा भावे ने आज के युग को सश्लेषण युग कहा है।

भारतीय चिन्तन ने सदैव सम्पूर्ण चर-अचर को एक सूत्र में बाधने का प्रयास किया है। सम्पूर्ण विश्व को एक परिवार के रूप में देखने और विश्व बन्धुत्व की मान्यता को आगे बढाने का ध्येय सदा से ही भारतीय दर्शन का आधार रहा है। इस मान्यता के पीछे सम्पूर्ण जीवों मे आत्मा की उभयनिष्ठता प्रधान रही है। इस अर्थ मे सभी मानव चाहे वे किसी देश के हों, जाति के हो, धर्म के हो, उनमे मतभेद नहीं बल्कि उनके सह-अस्तित्व को स्वीकार किया गया है। परन्तु आज विश्व समाजों में जो कठोर व संकीर्ण राष्ट्रीयता की भावना ने जन्म ले लिया है, वह समाजो और व्यक्तियों को अलग-अलग सीमाओं मे बाट देता है। सकीर्ण राष्ट्रीयता की अनिवार्य परिणति युद्ध है, अत विश्व नागरिकता और एक शांतिपूर्ण विश्व का विकास होना ही चाहिए। रोमा

रौला के शब्दों में—"भयकर विनाशकारी दो युद्धों ने कम से कम इस तथ्य को स्थापित कर ही दिया है कि प्रचण्ड आक्रमणकारी राष्ट्रीयता को समाप्त कर देना चाहिए और दीवार रहित व वर्ग-विहीन मानवता का संघ बनाना चाहिए ताकि, प्रेम, दया और सहानुभूति की भूमि पर मानवीय सबधो का विकास किया जा सके।

विश्व नागरिकता और नये विश्व व्यवस्था की संकल्पना का विकास

इस सकल्पना का विकास सर्वप्रथम जरमी बेन्थम ने किया। उन्होंने राष्ट्रो के सार्वभौमिक रूप मे मतभेदो व झगडो को सुलझाने हेतु विश्व न्यायालय की सकल्पना प्रस्तुत की। कोमेनियस दूसरा विचारक था, जिसने सम्पूर्ण विश्व में न्याय और शाति की स्थापना के लिए सभी के लिए शिक्षा तथा विश्व सरकार की बात रखी। काट ने विश्व शाति के लिए सभी देशो के एक सघ की आवाज उठाई। कोपरनिक्स, गैलीलियो, केपलर, न्यूटन आदि वैज्ञानिको की खोजो ने राष्ट्रीयता की सीमाए लाघ ली। इससे देश, जाति, धर्म और अनेक सीमाओ का खण्डन हुआ और मानवता को एक सूत्र मे बाधने का क्रम शुरू हुआ। इनके पश्चात् डारविन ने यह सिद्ध कर दिया कि सभी मनुष्य चाहे काले हो या गोरे सभी का उद्‌गम एप्स जाति का बदर है। इस आधार पर उन्होने सभी मनुष्यो मे एकसी क्षमता और सभावनाओ को स्वीकार किया। मार्क्स का वर्गविहीन समाज का नारा विश्व नागरिकता और नई विश्व व्यवस्था की भावना को आगे बढ़ाने मे मील का पत्थर साबित हुआ और वर्तमान मे परमाणु अस्त्र-शस्त्रो के कारण हिंसा की समग्रता ने विश्वनागरिकता और शातिपूर्ण विश्व के विचार को आवश्यक बना दिया है।

भारत मे विश्व नागरिकता की सकल्पना बहुत पहले से रही है। ''वसुधैव कुटुम्बकम्' —सारा विश्व परिवार है 'सर्वे भवन्तु सुखिन '—सारा विश्व सुखमय हो आदि सूत्र भारतीय दृष्टिकोण व चिन्तन को स्पष्ट करते हैं।

विश्व नागरिकता और नई विश्व व्यवस्था के लिए इन मान्यताओ का होना ही पर्याप्त नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि व्यक्तियो मे उदारता, सवेदनशीलता, सहयोग आदि की भावना विकसित हो।

विश्व नागरिकता और नई विश्व व्यवस्था की संकल्पना

यह सकल्पना विश्व मैत्री और बन्धुत्व पर आधारित है। द्वितीय विश्व युद्ध

के बाद यह भावना बनी कि विश्व शाति के लिए राष्ट्रो व उनके प्रतिनिधियों के मध्य समझ और सौहार्दता ही पर्याप्त नहीं है बल्कि देशों के निवासियो में भी परस्पर समझ और सौहार्दता होना भी अत्यन्त जरूरी है। गोल्ड स्मिथ ने कहा है—"अन्तर्राष्ट्रीयता एक भावना है जो व्यक्ति को यह बताती है कि वह अपने राज्य का ही सदस्य नहीं बल्कि विश्व का नागरिक भी है।" अब विश्व समाज द्वारा जो युद्ध छेडना है, वह होगा—अज्ञानता के विरुद्ध, गरीबी के विरुद्ध, अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध, भुखमरी के विरुद्ध, बीमारी के विरुद्ध, दमनात्मक क्रिया-कलापो के विरुद्ध जो मानवता को सकीर्ण घेरे मे बाधती है। अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव हेतु दो आवश्यक शर्तें होंगी—

1 सभी व्यक्तियो मे यह इच्छा और अभिलाषा उत्पन्न करना कि वे एक जैसे विश्व समाज मे साथ-साथ रहेगे। जहा सभी को समान न्याय बिना किसी जाति, जन्म, राष्ट्रीयता, वर्ग, धर्म और रग की मान्यताओं के आधार पर प्राप्त होगा।

2 सामान्य हितो और आपसी समझ द्वारा स्थापित लक्ष्यो की प्राप्ति हेतु सम्मिलित प्रयासो की ओर प्रत्येक को तत्पर और प्रेरित होना होगा।

विश्व नागरिकता और नई विश्व व्यवस्था हेतु शिक्षा की आवश्यकता

सकुचित राष्ट्रीयता ने विश्व के दो विश्व युद्ध देखे हैं। सरकार की आर्थिक और राजनैतिक धारणाओ पर आधारित शाति दीर्घकालिक व सर्वमान्य नहीं होती। यदि विश्व शाति और सह-अस्तित्व के प्रयासो को स्थायी बनाना है तो इसे मानवता की बौद्धिकता और नैतिक सुदृढता पर आधारित करना होगा। यूनेस्को के प्रियेम्बल मे यह स्वीकृत है कि युद्ध मनुष्यों के मस्तिष्क में उपजता है तो निश्चय ही शाति भी उसी मस्तिष्क की उपज होगी। अज्ञानता और गलतफहमिया व्यक्तियो व राष्ट्रो मे डर और भ्रम पैदा करते हैं, अत अज्ञानता को दूर कर और परस्पर समझ को विकसित कर अन्तर्राष्ट्रीय शाति का वातावरण बनाया जा सकता है। यह भार निर्विवाद रूप से शिक्षा पर है।

विश्व नागरिकता और नई विश्व व्यवस्था के विकास के लिए शिक्षा के निम्नलिखित लक्ष्य निर्धारित किये जा सकते हैं—

1 निस्वार्थता का विकास—शिक्षा द्वारा छात्रों में निजी हितों को सामान्य हितों के लिए त्याग की भावना जागृत करनी चाहिए।

2 छात्रों मे आलोचनात्मक दृष्टिकोण का विकास हो जिससे वे पूर्व

धारणाओं या अभिमतों के शिकार न हों तथा दूसरे मतो व दृष्टिकोणों के प्रति उदार व सहिष्णु हों।

3. छात्रो में सकीर्ण राष्ट्रीयता की भावना न भरी जाय। उन्हे यह बोध देना आवश्यक है कि वर्तमान समय मे अपने देश का ससार से अलग होकर अस्तित्व समव नहीं है।

4 मनुष्यो के अन्योन्याश्रित सबध को स्पष्ट करना चाहिए। ससार के प्रत्येक प्राणी एक दूसरे पर आश्रित हैं। परस्परोपग्रहो जीवानाम्—सभी प्राणी एक-दूसरे को उपकृत करते हैं।

5 मानवता मे विश्वास उत्पन्न किया जाय, जिससे व्यक्ति एक-दूसरे को छोटा-बडा नहीं समझेगा तथा सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना विकसित होगी।

6. अन्य राष्ट्रो की सस्कृतियों का ज्ञान एव उनका आदर करे।

विश्व नागरिकता और नई विश्व व्यवस्था के लिए पाठ्यक्रम

हमारे पाठ्यक्रम मे कुछ विषय ऐसे होते हैं जो स्वभावत ही अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव के विकास व शिक्षण के लिए प्रचुर सामग्री व सभावनाए रखते हैं, जैसे—इतिहास, भूगोल, राजनीति शास्त्र, अर्थशास्त्र, साहित्य, समाज-शास्त्र आदि। इन विषयो की विषय-वस्तु ऐसी है जो हमे मानव समाज मे अपनी स्थिति को समय और परिस्थितियो के परिप्रेक्ष्य मे सोचने-समझने की पर्याप्त सामग्री प्रदान करती है। इन विषयो मे अन्तर्राष्ट्रीय प्रस्तुतीकरण के साथ पाठ्यक्रम मे निम्नलिखित बिन्दुओ पर भी ध्यान देना अपेक्षित है—

- सम्पूर्ण पृथ्वी का ज्ञान।
- सभी नागरिको के रहन-सहन का ज्ञान।
- विश्व सस्कृतियो का ज्ञान।
- जीवन शैली का परिचय।
- विश्व के प्रमुख धर्मों की जानकारी।
- विश्व के बिखरे सौन्दर्य का ज्ञान।
- मानव के शाति स्थापित करने के अब तक के प्रयास आदि।

पाठ्येतर कार्यक्रम

विश्व नागरिकता और नई विश्व व्यवस्था के विकास की सभावनाए पाठ्येतर क्रियाओ में अधिक होती हैं। क्योंकि इन क्रियाकलापो में छात्रो की

सहभागिता स्वेच्छा पर निर्भर होती है। प्रार्थना, भ्रमण, पर्यटन, प्रदर्शन, संस्कृति व साहित्यिक प्रतिस्पर्धाएं उन्हे एक-दूसरे के निकट लाती हैं, तथा एक-दूसरे की अच्छाईयों को जानने व अपनाने का अवसर भी मिलता है।

संयुक्त राष्ट्र दिवस, मानवाधिकार दिवस, साक्षरता दिवस आदि अनेक अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व के समारोहो का आयोजन विश्व नागरिकता के विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक है। अन्तर्राष्ट्रीय ज्वलन्त समस्याओं जैसे रंग-भेद की नीति, फिलीस्तीन मुक्ति संघर्ष, निशस्त्रीकरण, पर्यावरणीय प्रदूषण आदि को लेकर वाद-विवाद, नाटकीय रचना द्वारा इन समस्याओं से परिचित कराया जा सकता है तथा उन्हे इससे निष्पक्ष मत बनाने मे भी सुविधा मिलती है तथा नई विश्व व्यवस्था के निर्माण में भी सहयोग मिलता है। प्राकृतिक प्रकोपो के समय कार्य, विकलागों आदि की सहायता से परस्पर उदारता, सहिष्णुता, प्रेम, दया, सहानुभूति आदि मूल्यो के विकास से भी विश्व-शाति के विचारो को बल मिलता है।

विश्व नागरिकता के लिए यूनेस्को के प्रयास

सयुक्त राष्ट्र सघ ने यूनेस्को की स्थापना कर विश्व नागरिकता और नये विश्व के निर्माण का दृष्टिकोण विकसित किया है। यूनेस्को के अनुसार ''चूकि युद्ध का प्रारम्भ मनुष्य के मस्तिष्क मे होता है इसलिए मनुष्य के मस्तिष्क मे ही शाति स्थापित करनी चाहिए। यूनेस्को ने इस दृष्टि से तीन उद्देश्यों को पूर्ण करने का प्रयत्न किया है—

1 विश्व राष्ट्रो मे पारस्परिक ज्ञान तथा अवबोध उत्पन्न करना।

2 सस्कृति तथा शिक्षा का प्रसार करना।

3 ज्ञान की सुरक्षा, वृद्धि और प्रसार करना।

मनुष्य दो विश्वयुद्ध के परिणामो को भोगने के बाद तीसरे विश्व युद्ध को नहीं चाहता। वह शाति चाहता है। शातिकाल मे ही उच्च कोटि की कला व सस्कृति का निर्माण होता है। युद्ध तो कला व सस्कृति का सहारक है। अब युद्ध का खतरा मोल लेना मानवता के विनाश का खतरा मोल लेना है। मानवता का कल्याण विश्वशाति मे ही है। हिंसा की समग्रता ने तथा आर्थिक, वैज्ञानिक व तकनीकी, राजनैतिक व सामाजिक घटकों ने विश्व को करीब लाने और सहयोग व सद्भाव को विकसित करने में अह भूमिका निभाई है। पर वह शिक्षा ही है जो विश्व नागरिकता व नई विश्व व्यवस्था को साकार कर सकती है।

जीवन के प्रति सम्मान— अल्बर्ट स्वेजर

अल्बर्ट स्वेजर एक ऐसे जर्मन दार्शनिक हैं जिन्होंने पाश्चात्य दर्शन में नैतिकता के क्षेत्र मे एक क्रान्तिकारी विचार प्रस्तुत किया। स्वेजर से पूर्व दार्शनिकों की यह मान्यता थी कि नैतिकता का क्षेत्र केवल मानव है। इसलिये व्यवहारों के औचित्य और अनौचित्य का प्रश्न केवल मानव जगत् से ही उठता है। मानवेतर प्राणियों के प्रति व्यवहार का नैतिकता से कोई सम्बन्ध नहीं है। अल्बर्ट स्वेजर ने भारतीय दर्शन और विशेषकर जैन दर्शन से प्रभावित होकर नैतिकता का विस्तार सम्पूर्ण प्राणियो के लिए किया। दूसरे शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि नैतिक और अनैतिक व्यवहार का प्रश्न केवल मानव जगत् तक ही सीमित नहीं है बल्कि इसका सम्बन्ध अन्य प्राणियो के प्रति मानव द्वारा किये गये व्यवहारो से भी है। स्वेजर ने नैतिकता के क्षेत्र मे जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया, उसे हम जीवन के प्रति सम्मान (Reverence for life) के नाम से जानते है।

अल्बर्ट स्वेजर ने डेकार्ट के इस सिद्धान्त का खण्डन किया—"मैं सोचता हू इसलिये मै हू" उन्होने कहा— 'मै जीवन हू, जिसे मै उन प्राणियो के मध्य रहकर जीना चाहता हू जो जीना चाहते हैं।" अर्थात् मनुष्य जीना चाहता है और वह अकेले नहीं जीना चाहता बल्कि उन सभी जीवो के बीच जीना चाहता है जो मनुष्य की भाति ही जीना चाहते हैं। "मैं जीना चाहता हू" कथन से अल्बर्ट स्वेजर का यह अभिप्राय है कि मनुष्य मे रहस्यात्मक उन्नति की चाहत है, जिसे हम एक शब्द मे सुख (Pleasure) कहते हैं।

भगवान् महावीर ने कहा—कोई भी मनुष्य दु ख नहीं चाहता। जिस प्रकार तुम सुख की चाहत रखते हो, उसी प्रकार अन्य जीव भी सुख की चाहत रखते हैं दु ख की नहीं। स्वेजर के अनुसार वही मनुष्य नैतिक है जो सभी जीवो की हर प्रकार से सहायता करने का दायित्व बोध अपने ऊपर लेता है। जहा तक उसमे क्षमता हो, वह दूसरे प्राणियो की सहायता करे तथा किसी भी प्राणी को कष्ट न पहुचाये। दूसरे शब्दो मे उनका कहना है कि जीव चाहे छोटा हो या बडा सबका जीवन पवित्र है (Life is sacred)। इससे स्पष्ट है कि अल्बर्ट स्वेजर निषेधात्मक और भावात्मक दोनो रूप से अहिंसा का प्रतिपादन करते हैं। निषेधात्मक रूप से अहिंसा के अन्तर्गत सभी प्राणियो की हिंसा (हत्या एव दु ख देना) का निषेध करते हैं और भावात्मक रूप से सभी प्राणियों के उन्नत जीवन जीने में सहायता करने का समर्थन

करते हैं।

प्रश्न है कि अल्बर्ट स्वेजर व्यक्तिगत जीवन से सार्वभौम जीवन की सुरक्षा का सिद्धान्त क्यों प्रस्तुत करते हैं। वस्तुत तो वे सभी जीवन की अखण्डता में विश्वास करते हैं। वे मानते हैं कि सभी प्राणी एक-दूसरे के लिए उपयोगी हैं, इसलिए उनके प्रति प्रेम और उनके जीवन का सम्मान हमारा धर्म हो जाता है। केवल मनुष्य ही एक-दूसरे के लिए मूल्यवान नहीं है, पशु-पक्षी, छोटे जीव भी मनुष्य के लिए मूल्यवान है। उदाहरणार्थ हम मानव कल्याण के लिए कुछ जीवो पर प्रयोगशाला में प्रयोग करते हैं, उनको यातना देते हैं, उनकी हत्या कर उनकी चीरफाड़ करते हैं और उसके आधार पर मानव के लिए हितकर सिद्धान्त की स्थापना करते हैं अथवा अमूल्य औषधि का निर्माण करते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि हर जीव मनुष्य के लिए उपयोगी है। उन्हे उपयोगी जानकर हमे उनकी सरुक्षा करनी चाहिए। उन्हे कष्ट नहीं देना चाहिए। जानबूझकर उनका शोषण नहीं करना चाहिए और यदि अपरिहार्य कारणवश हम उनकी हिंसा करते हैं तो इसके लिए पश्चाताप तो करना ही चाहिये, साथ ही साथ इस कर्म को दूर करने के लिए भावात्मक रूप से भी कदम उठाना चाहिये।

अल्बर्ट स्वेजर के अनुसार अहिंसा की नीति का आधार बाहरी जीव नहीं बल्कि अन्तरात्मा है। इसलिए उनकी दृष्टि मे दया जो विशेष रूप से दूसरों के प्रति की जाती है, नैतिकता की दृष्टि से बहुत ही सकीर्ण है। नैतिकता के अन्तर्गत अपनी हर परिस्थितियो में सुखमय जीवन की आकाक्षा रहती है तथा दूसरो के सुखमय जीवन मे सहायक बनकर अपनी आत्मा को पूर्ण करने की चेतना होती है।

अहिसा सभी प्राणियो के प्रति प्रेम है। प्रेम का अर्थ सुख-दु ख एव प्रत्येक प्रयत्नो मे सभी के प्रति भाईचारेपन का अनुभव करना है। हर जीवन के प्रति सम्मान हमारे जीवन की मूल प्रेरणा है, दिशा निर्देशक शक्ति है तथा सहानुभूति, प्रेम तथा अन्य सभी मूल्यवान उत्साहों का आधार है। परन्तु दु ख की बात है कि यह ससार एक ऐसा दु.खान्त नाटक है कि जिसमें हर व्यक्ति जीवन के विरुद्ध ही जीना चाहता है, एक-दूसरे की वेदी पर अपना अस्तित्व कायम रखना चाहता है। तभी जीवन के प्रति सम्मान का सिद्धान्त इससे भिन्न नाटक की कल्पना करता है। इस नाटक मे अपनी जिजीविषा के अन्तर्गत दूसरे की जिजीविषा का ज्ञान भी सम्मिलित है। इसमे सम्पूर्ण जीवन को सार्वभौम बनाने की दृष्टि से एकता स्थापित करने की आकांक्षा रहती है। इसलिये जीवो के प्रति सम्मान के नीतिशास्त्र का अर्थ है—अपने जीवन का सम्मान करना और अपने जीवन से इतर जीवन का सम्मान करना।

अल्बर्ट स्वेजर कहते हैं कि वही व्यक्ति अपनी आन्तरिक स्वतंत्रता का अनुभव करता है जो दूसरे के जीवन की स्वतंत्रता के सरक्षण में सहायक

है। यहां स्वेजर की स्थिति जैन दर्शन की उन भावनाओं से है, जहां कहा गया है—अन्त.करण की विशुद्धता और बाह्य रूप से अन्य प्राणियों के प्रति दया दोनों अहिंसा व्रत के पालन के लिए आवश्यक है।

सामान्यत हम क्षमा और सहिष्णुता को भी अहिंसा के अन्तर्गत लेते हैं, परन्तु प्रश्न है कि हमें क्षमा क्यों करनी चाहिये? स्वेजर का मानना है कि हम दूसरों को क्षमा नहीं करते, अपने आपको क्षमा करते हैं। उनका कहना, अच्छाइयां और बुराइया सब में है। सामान्यतः कोई हम पर गुस्सा करता है, गाली देता है, मारता है या अन्य प्रकार से अहित करता है, तो हम इसका बदला लेना चाहते हैं। स्वेजर कहते हैं कि उससे बदला लेने से पूर्व मुझे सोचना होगा कि मैं किसी पर गुस्सा करता हू या नहीं, मैं किसी को गाली देता हू या नहीं, मैं किसी को मारता हू या नहीं। और यदि मुझमें किसी न किसी परिमाण में ये दोष हैं तो इसका अर्थ है—दूसरे के द्वारा किये अहितकर व्यवहार को क्षमा करना, अपने आपके द्वारा किये गये अहितकर व्यवहार को क्षमा करना है। नीतिशास्त्र मे दो प्रकार की युक्तिया काम मे लाई जाती हैं—पर-समर्थक और स्व-समर्थक। अल्बर्ट स्वेजर स्व-समर्थक युक्ति पर विश्वास करते हैं और इस प्रकार की युक्ति श्रेष्ठ मानी जाती है। उनका कहना है—किसी भी व्यवहार पर दूसरो के आधार पर निर्णय नहीं किया जा सकता बल्कि अपने व्यवहार के आधार पर ही निर्णय किया जा सकता है।

वे कहते हैं—दूसरे के प्रति दया करके मैं भद्र, शान्त और क्षमाशील नहीं हू बल्कि उस व्यवहार के कारण हू, जिसके द्वारा मैं गहरी आत्मानुभूति की सत्यता को प्रमाणित करता हू। अल्बर्ट स्वेजर नैतिकता के सम्बन्ध मे और विशेषकर जीवन के प्रति सम्मान के सिद्धान्त मे सापेक्ष नैतिकता को नहीं मानते, उनके अनुसार शुभकर्म हर अवस्था मे दूसरे के जीवन की प्रगति को देखता है। किसी भी परिस्थिति मे अन्य प्राणी को कष्ट देना या हत्या करना उनकी दृष्टि मे पाप है। यह ठीक है कि अपने अस्तित्व की रक्षा करने के लिए अनिवार्यतावश व्यक्ति को दूसरे जीवो की हत्या करनी पडती है, परन्तु यह उसकी अनिवार्यता है, नैतिकता नहीं। नैतिकता का तकाजा है—सोच समझकर किसी जीव की हत्या न करे या दु ख न पहुचाये। जिस प्रकार जैन दर्शन मे प्रमाद को हिंसा का मूल कारण माना गया है, अल्बर्ट स्वेजर भी असावधानी (प्रमाद) को ही हिंसा का मूल कारण मानते हैं। इसलिये वे दूसरे जीवो के प्रति सवेदनशील होने की शिक्षा देते हैं और यथासभव उनके कल्याण का दायित्व व्यक्ति के स्वय के निर्णय पर छोड देते हैं। इसी दायित्व बोध में अहिंसा का निवास है।

अतएव अल्बर्ट स्वेजर के दर्शन मे अहिंसा का आधार सभी जीवो की समता है, जीवन की अखण्डता है, जीवो की परस्पर पूरकता है और अहिंसा का सार मानव के द्वारा अपनाये गये सयम मे निहित है।

अहिंसा-प्रशिक्षण के सूत्र

मानवीय संवेग हिंसा के लिए उत्तरदायी

सवेग प्राणी की उत्तेजित अवस्था है। ऐसी उत्तेजनाए प्राय आकस्मिक और तीव्र होती हैं। सवेगात्मक उत्तेजना की तीव्रता इतनी अधिक होती है कि इस उत्तेजना के बने रहने तक प्राणी के अन्य सभी व्यवहार अस्त-व्यस्त हो जाते हैं। सवेग की इसी विशेषता के कारण मनोवैज्ञानिको ने इसे एक विध्वसात्मक शक्ति के रूप मे स्वीकार किया है। हर प्रेरणा के साथ किसी न किसी सवेग का सबध जुड़ा रहता है। जैसे आक्रामकता एव कलहप्रियता के साथ क्रोध का, पलायन के साथ भय के सवेग का सबध। सवेग में प्राणी के पास अतिरिक्त शक्ति होती है जिसे वह प्रेरणा की तृप्ति हेतु व्यय कर सकता है। सवेगात्मक स्थिति में हमारे अन्दर एक प्रकार की हलचल मच जाती है तथा साथ ही हमारी शारीरिक क्रियाओ मे भी परिवर्तन होता है। भय के समय हम घबरा जाते हैं तथा घबराहट के कारण हमारी मुखाकृति पीली हो जाती है, शरीर कापने लगता है। इसी प्रकार क्रोध की स्थिति मे हमारी मुखाकृति लाल हो जाती है तथा श्वास की गति तीव्र हो जाती है।

सवेग दो प्रकार के हैं—सुखद एव दुखद। सुखद सवेदनो से सृजनात्मक प्रवृत्ति बढती है जबकि दुखद सवेदनो से विध्वसात्मक प्रवृत्ति। लोभ, भय, शत्रुता आदि दुखद सवेदन हैं जो विध्वसात्मक हैं तथा ये हिसा एवं युद्ध के लिए भी जिम्मेदार हैं।

युद्ध या हिंसा सार्वभौमिक है, यह सदैव होती रही है। अनेक देशो के पुराण व इतिहास इसके प्रमाण हैं। ये युद्ध, धर्म, प्रतिरोध, अस्तित्व, स्वतन्त्रता, भोजन, भूमि, स्त्री, गौरव, लिप्सा आदि के लिए लडे गए हैं। एलिक्स स्ट्रेची ने कहा है—"इन सबको देखते हुए व इस प्रकार से देखने से लगता है कि युद्ध करने की आवश्यकता मनुष्य के लिए कौई स्वदेशी वस्तु है। वह एक

ऐसी चीज है जो अन-उन्मूलनीय है तथा मानव मस्तिष्क में इसकी जड़े गहरी हैं और युद्ध को समाप्त करने के प्रयास निरर्थक हैं।" मूलतः यदि देखा जाए तो हिंसा या युद्ध का मुख्य कारण मानव स्वभाव की इच्छाए और वासनाएं हैं। चूकि मानवीय इच्छाओ और वासनाओ को नियन्त्रित/सयमित किया जा सकता है, इसलिए निश्चित ही शाति के प्रयास सार्थक है।

हॉब्स ने युद्ध या हिंसा के तीन कारण बतलाए—

1. प्राप्ति की इच्छा (Desire for gain)
2. क्षति का भय (Fear of injury)
3. बहादुरी से प्रेम (Love of glory)

हॉब्स के बताये ये तीनो कारण सवेगों पर आधारित हैं। कुछ प्राप्ति की इच्छा लोभ का सवेग है। क्षति या अपमान का भय, भय का सवेग है। बहादुरी की प्रशसा मिथ्याभिमान का सवेग है। और ये तीनो ही हिंसा या युद्ध के कारण हैं। हिंसा का पहला प्रयोग स्वय को दूसरे व्यक्तियो या पशुओ आदि का स्वामी बनाने के लिए होता है। हिंसा का दूसरा प्रयोग स्वामित्व को सुरक्षित रखने के लिए होता है और हिंसा का तीसरा प्रयोग उन्हे यह महसूस कराने मे होता है कि उन्हे कम आका जा रहा है।

कुछ सवेगो को विस्तार से देखे—

लोभ (Greed)

सुकरात ने कहा था—"लोग सरल जीवन पद्धति से सतुष्ट नहीं होते। वे सोफा, मेज तथा अन्य उपस्कर (फर्नीचर) इकट्ठा करते रहेगे। हमे आवास, वस्त्र तथा भोजन जैसी आवश्यकताओ से आगे बढ जाना चाहिए, उसके पश्चात् हमे अपनी सीमाओ को बढाना चाहिए क्योकि मूल स्थिति अधिक समय तक नहीं रहती और जो प्रदेश अपने निवासियो का भरण-पोषण करने मे काफी था, वह अब उसके लिए छोटा हो जाएगा, काफी नहीं रहेगा तब हम पड़ोसियो की जमीन का टुकडा हथियाना चाहेगे। यदि हमारी तरह उनकी भी आवश्यकताए सीमा को पार कर जाये और वे स्वय धन के असीमित सचय के लिए लग जाए तो परिणाम होगा—युद्ध।"

जब व्यक्ति अपनी आवश्यकताओ/अनिवार्यताओं से विलासिताओं की ओर

बढ़ने लगते हैं तो परिणाम संघर्ष के अलावा और हो भी क्या सकता है। आवश्यकता ने हमें अस्त्र दिये पर प्रतिस्पर्धा उनमें विविधता लाई तथा उनके किनारों को और ज्यादा नुकीला किया।

आर्य लोग लालचवश ही भारत आये। अंग्रेजी शासन को रोडेशिया एवं ट्रासवल की स्वर्ण-खाने, भारत का जूट तथा बर्मा का रबड़ खींच लाया। न जाने लालच के वशीभूत हो कितनी हिंसा हुई है? इसी सवेग ने व्यक्ति की दृष्टि मे अन्य सब प्राणियो को उसका भोग्य बना दिया।

क्रूरता (Cruelty)

मेक्डूगल के अनुसार मूल प्रवृत्तिया मानवीय स्वभाव पर शासन करती हैं। यदि शक्तिशाली लोगो मे लड़ने की प्रवृत्ति है तो शाति कभी भी सम्भव नहीं। विलियम जेम्स के अनुसार—युयुत्सा (युद्ध की इच्छा) व्यक्ति को उत्तराधिकार में प्राप्त होती है। अस्तित्व के सघर्ष मे केवल वही जातिया जीवित रही जो युद्धप्रिय थी।

रोटी और रोजगार ने व्यक्ति को इतना क्रूर बना दिया कि वे किलिग प्रोफेसन की ओर जाने को बाध्य हो गये। बर्नार्डशा लिखते हैं—प्रारम्भ मे कोई भी इज्जतदार औरत ऐसे किसी व्यक्ति से शादी नहीं करती थी जो कुछ लोगों या पशुओ को मौत के घाट नहीं उतार देता था।

वर्तमान मे नागरिक स्वय ही सेना गठन करते हैं, उनके लिए पैसा चुकाते है तथा उन सैनिको की जाने उनके लिए बधक होती हैं। हम यह नहीं सोचते कि वे भी हमारे ही भाई हैं। उनकी प्रवृत्ति भी क्रूर नहीं थी, मारने की नहीं थी। पर धीरे-धीरे हमने उन्हे प्रशिक्षण दिया और क्रूर बना दिया। आज के युद्ध साधनो ने उनकी चेतना को लुप्त कर दिया है। कुत्ते-बिल्ली से घबराने वाला मनुष्य इतना क्रूर बन जाता है।

आज तो क्रूरता मनोरजन बनती जा रही है। स्वयसेवी नागरिक युद्ध को मनोरजन हेतु देखना चाहते हैं ताकि उन्हे समाजसेवा का मौका मिले। प्राचीन समय में और आज भी अरब राष्ट्रों मे पशुओ को आपस में लड़ाकर क्रूरतापूर्ण मनोरजन किया जाता है। क्रूरता की हद तब हो जाती है जब अबोध शिशुओं को पशुओं की पीठ पर बाधकर पशुओं को उकसाने का कार्य उनसे लिया

जाता है तथा स्वय की विलासिताओं व प्रसाधनों के नाम पर अबोध व करुण पशुओं की जानें ले ली जाती हैं।

आर्थिक जगत् मे शोषण भी क्रूरता का उदाहरण है। बिना क्रूरता के शोषण सभव नहीं हो सकता, रिश्वत लेना संभव नहीं हो सकता। सामाजिक व्यवहारों मे यह क्रूरता मालिक-नौकर के सबधों के बीच, सास-बहू के रिश्ते के बीच देखी जा सकती है। दहेज के नाम पर बहुओं को जलाने की घटनाए क्रूरता का उत्कर्ष है।

मिथ्याभिमान (Vanity)

अडोर्नो के अनुसार जिन व्यक्तियो मे यह सोचने की अतिरजित प्रवृत्ति होती है कि उनका अपना समूह अथवा जाति अन्य समूहों या जातियो से अत्यन्त श्रेष्ठ है, उन लोगो का सामान्य दृष्टिकोण रूढिवादी होता है। वे शक्ति की प्रशसा व पराजितो से घृणा करते है। अर्थात् जो व्यक्ति स्वय को उच्च मानते हैं वे युद्ध प्रिय होते हैं तथा हिंसा में उनका विश्वास होता है। राजनीतिज्ञो का यह मानना है कि चीन का भारत पर आक्रमण इसलिए नहीं हुआ था कि वे भूमि हडपना चाहते थे, बल्कि चीन भारत को अपनी श्रेष्ठता बतलाना चाहता था।

इतिहासकार यहा तक कहते हैं कि योद्धाओ और विजेताओ के गुणगान रामायण, महाभारत, हिटलर, मुसोलिनी आदि ने ही सशस्त्र व प्रशिक्षित अपराधियो को पैदा किया है। कार्लिल व नीत्शे के हीरो-वरशिप के विचार ने न जाने कितने मिथ्याभिमान को जन्म दिया है। हिटलर अपनी सर्वशक्तिमान सेना के बावजूद भी पौलेण्ड व बेल्जियम मे हार गया लेकिन उसके मिथ्याभिमान ने न जाने कितनो का खून बहाया।

कई व्यक्तियो व राष्ट्रो मे वरिष्ठता की भावना भी होती है जिससे वे सोचते हैं—सम्पूर्ण सृष्टि उनके भोग के लिए है। उनके इस वरिष्ठता के विचार ने विश्व मे जातिभेद, रगभेद, उच्च-निम्न आदि की दीवारे खडी की हैं। ब्रिटिश लोग यह कहा करते थे—हम एक महान् शक्ति रखते हैं, जहा सूर्य कभी अस्त नहीं होगा, तब कमजोर राष्ट्र उनका आदर क्यों नहीं करे। उन राष्ट्रों को तो हमारा शुक्रिया अदा करना चाहिए कि हम उन्हें अच्छी सरकार देते हैं।

नेपोलियन भी विश्व-व्यवस्था को अच्छा करने के मिथ्याभिमान के कारण ही विश्व पर चढ़ाई करता था। फिख्ते लिखते हैं—जर्मन विशिष्ट हैं क्योंकि उन्हीं के पास शुद्ध भाषा है और भाषा चरित्र के तुल्य है। इसलिए ऐसे व्यक्तियो को दूसरों पर शासन करना ही चाहिए। अतः स्पष्ट है कि किस तरह यह महद्भाव ग्रंथि तथा मिथ्याभिमान का संवेग मनुष्य को हिंसा और युद्ध की ओर धकेलता है।

असहिष्णुता (Intolerance)

एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को सहन नहीं करना चाहता। एक धर्म दूसरे धर्म को सहन करना नहीं चाहता। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को सहन नहीं करना चाहता। परिणाम होता है हिंसा—सघर्ष—युद्ध। व्यक्ति-व्यक्ति के बीच असहिष्णुता है जिससे पारिवारिक व सामाजिक कलह देखने को मिलती है। एक धर्म दूसरे धर्म के प्रति असहिष्णु है। परिणाम है साम्प्रदायिक हिंसा। धार्मिक असहिष्णुता के कारण न जाने कितने युद्ध लडे गये हैं, कितना खून बहा है। ईराक-ईरान का युद्ध धार्मिक असहिष्णुता का ही परिणाम है। भारत मे वर्तमान साम्प्रदायिक आग धार्मिक असहिष्णुता का ही परिणाम है।

राष्ट्रो की असहिष्णुता तो जगजाहिर है। पूजीवादी राष्ट्र समाजवादी राष्ट्रो को नहीं चाहता। एकतत्र शासन पद्धति के लोग लोकतत्र को नहीं चाहते। राष्ट्रो की इस असहिष्णुता ने द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद एक लम्बे शीतयुद्ध को जन्म दिया था तथा इसी असहिष्णुता ने नाटो, सीटो व वार्सा जैसे सैनिक सगठनो को जन्म दिया था।

क्रोध (Anger)

व्यक्ति क्रोध के सवेग के कारण आक्रामक प्रवृत्ति को अपनाता है। क्रोध विवेकहीनता का कारण है। जिससे व्यक्ति हेय-उपादेय की दृष्टि को खो देता है तथा आक्रमण करना चाहता है। गीता मे भी कहा गया है—क्रोध मे व्यक्ति की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। उसे उचित-अनुचित का ध्यान नहीं रहता। वस्तुत· मनुष्यता एक उच्च गुण है किन्तु क्रोध में व्यक्ति पाशविक वृत्ति को अपना लेता है। इस पाशविक वृत्ति के कारण व्यक्ति दूसरों को तो नुकसान पहुचाता ही है पर वह स्वय को भी नुकसान पहुंचाता है। यह

क्रोध का ही परिणाम है कि व्यक्ति आत्महत्या तक पहुंच जाता है।

इस प्रकार व्यक्ति के स्वय के संवेग भय, लोभ, सत्ता व धन का मद आदि बातों पर युद्ध को पसन्द करने वाला स्वभाव निर्भर करता है। स्वार्थवृत्ति, आकाक्षाए, घृणा, द्वेष आदि मानव स्वभाव में पशुता की जड़ें हैं। पर जीवन मात्र सघर्ष नहीं है, जीवन सहयोग है। 19 वीं तथा 20 वीं शती अस्तित्व के लिए सघर्ष, प्रतिस्पर्धा, वर्ग-सघर्ष, विरोध आदि शब्दों मे ही गुजर गई। इस शती मे डार्विन व सैनिक दिमाग वाले व्यक्तियो का प्रभुत्व रहा, जिन्होने घृणा का, क्रूरता का सिद्धान्त दिया पर 21 वीं शती अस्तित्व के लिए सघर्ष पसन्द नहीं करेगी, उसका विश्वास मानवीय सहयोग मे होगा, जो दुखद सवेदनो पर नियन्त्रण से ही सभव हो पाएगा।

अहिंसा का सैद्धान्तिक आधार

अहिंसा क्या है?

सभी प्रकार के जीवो के प्रति सयमपूर्वक जीवन-व्यवहार ही अहिंसा है। मन वचन और काया—इनमें से किसी एक के द्वारा किसी प्रकार के जीवो की हिंसा न हो, ऐसा व्यवहार ही सयमी जीवन है। ऐसे जीवन का निरन्तर धारण ही अहिंसा है। कुछ दार्शनिक संयमपूर्वक जीवन-व्यवहार से तात्पर्य सभी प्रकार के जीवो के प्रति करुणाभाव से लेते हैं। गाधीजी ने भी अहिंसा का यही अर्थ लिया है। इनके अनुसार सर्व-जीबो के प्रति सद्भावना ही अहिंसा है या समस्त जीवो के प्रति दुर्भावना का पूर्ण तिरोभाव ही अहिंसा है।

निष्क्रिय और सक्रिय अहिंसा

अहिसा का शाब्दिक अर्थ है—हिंसा न करना। अहिंसा के पारिभाषिक अर्थ निषेधात्मक एव विधेयात्मक दोनो हैं। राग-द्वेषात्मक प्रवृत्ति न करना, प्राण-वध न करना या प्रवृत्ति मात्र का निषेध करना निषेधात्मक अहिंसा है। जबकि सत्-प्रवृत्ति और विधेयात्मक अहिंसा से हिंसा का निषेध भी होता है। हिसा न करने वाला यदि आन्तरिक प्रवृत्तियो को शुद्ध न करे तो वह अहिसा नहीं होगी। इसलिए निषेधात्मक अहिंसा मे सत्यप्रवृत्ति की अपेक्षा रहती है और विधेयात्मक अहिसा मे हिंसा का निषेध भी रहता है। व्यवहार मे निषेधात्मक अहिंसा को निष्क्रिय अहिंसा और विधेयात्मक अहिंसा को सक्रिय अहिसा कहा जाता है।

अहिंसा के दो पक्ष

अहिंसा के दो पहलू हैं—

1. अहिंसा का सैद्धान्तिक पक्ष।
2. अहिंसा का व्यवहारिक पक्ष।

अहिंसा के सैद्धान्तिक पक्ष मे अहिंसा के दार्शनिक सत्यों का

अवबोध कराया जाता है जबकि अहिंसा के व्यवहारिक पक्ष में उपयोगिता प्रेरित या स्वार्थप्रेरित अहिंसा का समावेश होता है। यहा हमारा विवेच्य विषय है—अहिंसा का सैद्धान्तिक पक्ष क्यो ? जब तक अहिंसा का सैद्धान्तिक पक्ष मजबूत नहीं होता, व्यवहार डगमगा जाता है।

अहिंसा का सैद्धान्तिक स्वरूप

अहिंसा-प्रशिक्षण मे स्वरूप का निर्धारण किया जाए तो उसके दो रूप हो सकते हैं—सैद्धान्तिक और प्रायोगिक। सैद्धान्तिक प्रशिक्षण में दार्शनिक सत्यों का अवबोध कराया जाता है। अहिंसा के दार्शनिक पहलू अनेक हैं। यहां कुछ ऐसे दार्शनिक बिन्दुओ का उल्लेख किया जा रहा है, जिनको समझे बिना अहिंसा के प्रशिक्षण का कोई आधार भी नहीं बनता। दार्शनिक पृष्ठभूमि पर अहिंसा की मूल्यवत्ता प्रमाणित करने वाले पाच बिन्दु हैं—

1 आत्मा का अस्तित्व।
2 आत्मा की स्वतत्रता।
3 आत्मा की समानता।
4 जीवन की सापेक्षता।
5 सह-अस्तित्व।

1. आत्मा का अस्तित्व

आत्मा के अस्तित्व को स्वीकृत किये बिना अहिसा का कोई आधार नहीं बनता। इसलिए 'आत्मा है' इसकी स्वीकृति आवश्यक है। भौतिक अस्तित्व की प्रतिक्रिया ने मनुष्य को आत्मिक अस्तित्व की ओर गतिमान किया। उसे इस सत्य की दृष्टि प्राप्त हुई कि चेतन का अस्तित्व अचेतन से स्वतत्र है। इस विचार ने सामाजिक विकास के सामने आत्मिक विकास और राजतत्र के सामने आत्म-तत्र का प्रथम सूत्रपात किया। इस सूत्रपात ने अहिंसा का मूल्य परिवर्तन कर डाला। सामाजिक क्षेत्र मे अहिंसा का अर्थ था—मनुष्यो तथा मनुष्योपयोगी पशु-पक्षियो को न मारना अर्थात् आशिक अहिंसा थी। और न मारने का लक्ष्य था—सामाजिक सुव्यवस्था का निर्माण तथा स्थायित्व। जबकि आत्मिक क्षेत्र में अहिंसा का अर्थ हुआ—हिंसा का पूर्ण निषेध—किसी प्राणी को न मारना, न मरवाना और मारने वाले का अनुमोदन भी नहीं करना। अर्थात् जैसे-जैसे आत्मा, आत्मोदय और मुक्ति का दर्शन विकसित हुआ वैसे-वैसे अहिंसा व्यापक होती चली गई।

2. आत्मा की स्वतंत्रता

प्रत्येक आत्मा का सुख-दु ख अपना-अपना है। इस दृष्टि से आत्मा स्वतंत्र है। चूंकि सभी आत्माएं स्वतंत्र हैं, इसलिए किसी भी प्राणी के हनन का अधिकार किसी को भी नहीं है। सभी प्राणी जीना चाहते हैं, मरना कोई भी नहीं चाहता। इसलिए किसी भी प्राणी को कष्ट देने का अधिकार हमें नहीं है। इसलिए आवश्यक हिंसा भी हिंसा ही है, उसे अहिंसा की कोटि में नहीं रखा जा सकता। जिस तरह से हमारा अस्तित्व स्वतत्र है, उसी तरह से क्षुद्र से क्षुद्र प्राणी का अस्तित्व भी स्वतंत्र है। अस्तित्व की दृष्टि से सभी स्वतत्र हैं। इसलिए किसी की भी स्वतत्रता का हनन करना हिंसा है। आत्मा की स्वतत्रता को स्वीकार कर लेने में अहिंसा को व्यापकता मिलती है।

3. आत्मा की समानता

यद्यपि आत्मा अनन्त है तथा उनकी कर्मकृत अवस्थाए भिन्न-भिन्न हैं पर स्वरूप की अपेक्षा से सब आत्माए समान हैं। समानता का यह सिद्धान्त मनुष्य तक ही सीमित नहीं है। ससार मे जितने प्राणी हैं, उन सबकी आत्मा समान है। सुख-दु ख, प्रिय-अप्रिय की वृत्ति प्राणी मात्र मे समान होती है। अहिंसा की भावना को समझने और बलवान बनाने के लिए आत्मा की समानता का सिद्धान्त अत्यन्त उपयोगी है। भगवान् महावीर ने कहा—प्राणी मात्र को आत्म तुल्य समझो। हे पुरुष ! जिसे तू मारने की इच्छा करता है, जिस पर शासन करने की इच्छा करता है, जिसे अपने वश मे करने का विचार करता है—वह तेरे जैसा ही प्राणी है।" आचाराग मे कहा गया है—"जैसे मुझे कोई बेंत, हड्डी, ककर आदि से मारे, पीटे, ताडित करे, दु ख दे, व्याकुल और भयभीत करे, प्राणहरण करे तो मुझे दु ख होता है, ठीक इसी तरह सभी प्राणियों को भी होता है—यह सोचकर किसी भी प्राणी को नहीं मारना चाहिए, उन पर हुकूमत नहीं करनी चाहिए।" गाधी जी के अनुसार—जैसी अपेक्षा दूसरों से अपने लिए करते हो, वैसा ही बर्ताव उनके प्रति तुम करो। आत्मौपम्य की यही सार्थकता है।

अस्तित्व, ज्ञान और वीर्य की सामर्थ्य की दृष्टि से सभी आत्माए समान हैं। यदि इस समानता के सिद्धान्त को समझ लें तो—

- छोटे जीवो की बलि के द्वारा बड़े जीवों को बचाने की बात अहिंसा को मान्य नहीं हो सकती।

● मनुष्य को बचाने हेतु दूसरे जीवो की हिंसा अहिंसा को मान्य नहीं हो सकती।

● रग, भेद, जाति-भेद आदि के आधार पर अत्याचार अहिंसा के दृष्टि से मान्य नहीं हो सकते।

4. जीवन की सापेक्षता

कोई भी व्यक्ति या प्राणी निरपेक्ष रहकर अपने अस्तित्व की रक्षा नहीं कर सकता। इसी कारण जीवन को सापेक्ष माना गया है। सापेक्षता का यह सिद्धान्त प्रकृति के कण-कण मे लागू होता है। कोई भी प्राणी तथा वस्तु एवम् वस्तु व्यवस्था सापेक्षता की मर्यादा से बाहर नहीं है। गाल्टुग ने शाति को अविभाज्य कहा है। उसने शाति के पाच रूप बतलाये हैं—विश्वशाति, व्यक्ति की शाति, समाज की शाति, प्रकृति की शाति और सस्कृति की शाति। ये सभी परस्पर सापेक्ष हैं। एक की अशाति दूसरे की अशाति का कारण बन जाती है। इसलिए अहिंसा की अवधारणा को व्यापकता प्रदान करने की दृष्टि से जीवन की सापेक्षता को स्वीकार करना ही पडेगा। निरपेक्षता को स्वीकार करने का अर्थ है—क्रूरता को, हिंसा को स्वीकार करना, इसलिए सभी प्राणियो की अपेक्षा करो। सापेक्षता से स्नेह बढ़ता है, निरपेक्षता खिचाव लाती है। सापेक्षता है तो शोषण नहीं होगा, अपराध नहीं होगा, युद्ध और हिंसा नहीं होगी।

वर्तमान मे जब हिंसा समग्र होती जा रही है, तब जीवन की सापेक्षता का मूल्य भी समझ मे आ रहा है। प्रत्येक राष्ट्र को अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए दूसरे राष्ट्रो के अस्तित्व की भी अपेक्षा है। यही कारण है कि आज विकसित व समृद्ध राष्ट्र अविकसित व जरूरतमद राष्ट्रो के सहयोग करने के लिए तत्पर हो रहे है। जीवन की सापेक्षता को स्वीकार कर लिया जाय तो बहुसख्यको के लिए अल्पसख्यकों तथा बडो के लिए छोटों का बलिदान उचित नहीं ठहराया जा सकता।

5. सह-अस्तित्व

मैं रहूगा या वह रहेगा, अहिसा की परिधि मे इस चिन्तन को स्थान नहीं मिल सकता। मैं भी रहूगा, वह भी रहेगा—इस प्रकार सह-अस्तित्व की भाषा मे सोचना अहिंसा का दर्शन है। "सब जीव समान हैं और मनुष्य जाति एक है"—सहअस्तित्व को व्यापक रूप देने के लिए इस धारणा की व्यापक प्रतिष्ठा आवश्यक है। यदि यह भावना पुष्ट नहीं हुई तो जातिवाद, रगभेद, सम्प्रदायवाद,

अलगाववाद आदि के नाम पर हिंसा होती ही रहेगी।

आचार्य उमास्वामी का एक प्रसिद्ध सूक्त है—"परस्परोपग्रहो जीवानाम्।" परस्परता की अनुभूति सह-अस्तित्व के संबंध में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सूत्र है। प्रत्येक प्राणी में कुछ साम्य है और कुछ वैषम्य भी। केवल वैषम्य को प्रधान मान लेने से दूसरे को मिटाने की बात आएगी और केवल साम्य को प्रधान मान लेने से ऐकांतिक आग्रह जन्म लेगा। दोनों का परिणाम होगा—कलह। महावीर ने कहा—नित्य-अनित्य, सामान्य-असमान्य, वाच्य-अवाच्य, सत्-असत् जैसे विरोधी युगल का सहअस्तित्व संभव है। यदि सहअस्तित्व का विचार पुष्ट होता है तो—दूसरे के स्वत्त्व का अपहरण मान्य नहीं हो सकता। वर्ग-विग्रह, अन्तर्राष्ट्रीय विग्रह को मान्यता नहीं मिल सकती। इसलिए अहिंसा की व्यापकता का आधार सह-अस्तित्व की मान्यता है।

अहिसा के उपर्युक्त सैद्धान्तिक पक्ष को समझ लिया जाय तो अहिंसा को व्यापकता मिल सकती है और सैद्धान्तिक पक्ष को समझकर ही प्रायोगिक पृष्ठभूमि मजबूत की जा सकती है। विश्वशाति का आधार भी यही है।

मस्तिष्क परिवर्तन के सूत्र

मस्तिष्क परिवर्तन की आवश्यकता क्यों?

आज विज्ञान और मनोविज्ञान द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि मानवीय सवेग हिंसा या युद्ध के लिये जिम्मेदार है। इन संवेगो के कारण प्राणी के अन्य सभी व्यवहार अस्त-व्यस्त हो जाते है। सवेगों की इस विशेषता के कारण मनोवैज्ञानिक सवेगो को एक विध्वसात्मक शक्ति के रूप मे भी स्वीकार करते हैं। हॉब्स ने युद्ध या हिसा के तीन कारण बतलाये हैं और ये तीनो ही मानवीय सवेगो या भावनाओं पर आधारित हैं—

1 प्राप्ति की इच्छा (Desire for Gain)

2 क्षति का भय (Fear of injury)

3 बहादुरी से प्रेम (Love of Glory)

कुछ प्राप्ति की इच्छा लोभ का सवेग है। क्षति या अपमान भय का सवेग है, बहादुरी की प्रशसा मिथ्याभिमान का सवेग है। सुकरात ने भी लोभ आदि सवेगो या पदार्थ के प्रति आसक्ति को हिसा या युद्ध का मूल माना है। जब व्यक्ति पदार्थ की आसक्ति के कारण अपनी आवश्यकताओ से विलासिताओ की ओर बढ़ने लगता है तो हिसा अवश्यभावी हो जाती है। भय का सवेग व्यक्ति में असुरक्षा की भावना पैदा करता है और इस असुरक्षा की भावना के कारण वह आक्रामक हो जाता है, अस्त्र-शस्त्र जुटाता है। क्रूरता का सवेग व्यक्ति को पेशेवर हत्यारे के रूप मे बदल देता है। शत्रुता का भाव व्यक्ति मे अविश्वास पैदा करता है। जिससे वह स्वय को सदैव असुरक्षित पाता है। अत स्पष्टत मानव मस्तिष्क के ये सवेग हिसा या युद्धो के जिम्मेदार हैं। जब तक मनुष्य के इन सवेगो को नियत्रित नहीं किया जाता, इन निषेधात्मक भावो की जगह विधेयात्मक भावो को स्थापित नहीं किया जाता, तब तक अहिंसा या शाति की बात फलित नहीं हो सकती। इसलिए मानव मस्तिष्क

के परिवर्तन की आवश्यकता है।

परिवर्तन का साधन अनुप्रेक्षा व भावनाएं

मन की मूर्छा तोड़ने वाले विषयों का अनुचिंतन करना अनुप्रेक्षा कहलाता है। जिस विषय का अनुचिंतन बार-बार किया जाता है या जिस प्रवृत्ति का अभ्यास बार-बार किया जाता है, उससे मन प्रभावित होता है, इसलिए उस अनुचिन्तन या अभ्यास को भावना कहते हैं। मनुष्य जिसके लिए भावना करता है, जिस अभ्यास को दोहराता है उसी रूप में उसका सस्कार निर्मित हो जाता है। प्राचीन आगमो में "भावितात्मा" शब्द का प्रयोग हुआ है। भावितात्मा होने के पश्चात् व्यक्ति जो होना चाहता है, वह होकर रहता है। यह सारा एकाग्रता का चमत्कार है। हम जो होना चाहते हैं, हो जाते हैं। अर्थात् जिस रूप में मन को बदलना चाहते हैं, बदल लेते हैं। स्वसम्मोहन का प्रयोग, ऑटोसजेशन का प्रयोग—ये सब भावना के द्वारा सम्मोहित होने के ही प्रयोग हैं। पहले शरीर को देखना फिर सकल्प और भावना के प्रयोग द्वारा बदलने की भावना को अवचेतन तक पहुँचा देना—यही है रूपान्तरण की प्रक्रिया, मस्तिष्क को बदलने की प्रक्रिया।

भावना का आज की भाषा मे अर्थ है—ब्रेनवाशिंग। अर्थात् पुराने विचारो की जगह नये विचारो को भर देना। ब्रेनवाशिंग हेतु स्वत सूचन (Auto Suggestion) की पद्धति बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। सुझाव के द्वारा हमारी चेतना बदलना शुरू कर देती है तथा चेतना में परिवर्तन होने से आदतें बदली जा सकती है, सवेग बदले जा सकते हैं। एक ही बात को जब हम बार-बार दोहराते हैं, उस भावना की बार-बार आवृतिया करने से तंरगे पैदा होती हैं जो पुराने सस्कारो को उखाड देती हैं तथा नये सस्कारो का सृजन हो जाता है।

भावना का वैज्ञानिक स्वरूप

भावना का अर्थ मात्र सोचना नहीं है। इसका अर्थ है हमारे ज्ञानततुओं को, हमारी कोशिकाओ को अपने वशवर्ती कर लेना, उन पर अपनी भावनाओं को अकित कर देना। हमारे मस्तिष्क में खरबों न्यूट्रान हैं। ये न्यूट्रान ही नियामक हैं। भावना के द्वारा जो संकल्प न्यूट्रान तक पहुँच जाता है वह संकल्प सफल हो जाता है। मन की शक्ति के जागरण मे इन ज्ञानततुओं का बडा महत्त्वपूर्ण स्थान है।

मुख्य भावनाएं या अनुप्रक्षाएं

मस्तिष्क परिवर्तन के लिए अनासक्ति, अभय, मैत्री, क्षमा, मृदुता और करुणा की भावनाए महत्त्वपूर्ण हैं। पदार्थों के प्रति आसक्ति व्यक्ति को लालची बनाती है तथा व्यक्ति के प्रति आसक्ति राग-द्वेष का कारण बनती है—ये दोनों ही हिंसा के कारण हैं इसलिए अनासक्ति की भावना महत्त्वपूर्ण है। भय के सवेग को दूर करने के लिए अभय की भावना, शत्रुता के सवेग को दूर करने के लिए मैत्री-भावना तथा क्षमा-भावना, आक्रामक व्यवहार को खत्म करने के लिए मृदुता की भावना एव क्रूरता के सवेग को मिटाने के लिए करुणा की भावना महत्त्वपूर्ण है।

अनासक्ति

इन्द्रियो के विषय क्षणिक सुख देने वाले हैं, पर इनके भोग का परिणाम अन्तत दु खद होता है। व्यक्ति परिणाम को जानते हुए भी इन्द्रियो के विषयो के प्रति आसक्त रहता है। महाभारत मे कहा गया है—व्यक्ति धर्म को जानते हैं फिर भी उसमे प्रवृत्ति नहीं करते, अधर्म को भी जानते है लेकिन वह छोडा नहीं जाता। क्यो? क्योकि व्यक्ति मोहग्रस्त है, आसक्त है।

आवश्यकता पूर्ति हेतु पदार्थो के प्रति आकर्षण सहज है पर पदार्थो के प्रति आसक्ति असहज है। आसक्ति आवश्यकता नहीं है, व्यामोह है। शाति का अनुभव कर चुका व्यक्ति कभी भी आसक्त नहीं होगा। स्थूलभद्र वेश्या के घर पर रहते हुए भी अनासक्त रहे, पथभ्रष्ट नहीं हुए जबकि विश्वामित्र, पराशर आदि ऋषि पत्ते खाते हुए जगल मे रहे लेकिन वे पथच्युत हो आसक्त हो गये।

प्रत्येक मनुष्य के जीवन मे दु ख आता है, आपदाए आती है, प्रकोप आते हैं, कोई उन्हे रोक नहीं पाता। लेकिन इनसे होने वाले दु खद सवेदनो से स्वय को बचाया जा सकता है। घटनाए घटेगी पर व्यक्ति इनके साथ नहीं जुडेगा। घटना का ज्ञान व्यक्ति को होगा वह अवचेतन तक नहीं पहुचेगी। व्यक्ति यह सोचेगा कि मैं दु ख भोगने के लिए नहीं जन्मा हूँ, इस चिन्तन से पदार्थों से होने वाले सवेदन स्वत ही समाप्त हो जायेगे। यही है—अनासक्त योग। अनासक्ति का अर्थ है—पदार्थ के साथ जुड़ी चेतना का छूट जाना।

सामान्यत हर मनुष्य प्रिय-अप्रिय सवेदनो मे जीता है। जब तक प्रियता-अप्रियता, राग-द्वेष या आसक्ति का आवरण नहीं हटेगा दर्शन सभव

नहीं होगा। इसलिए अनासक्ति भाव से देखें, तटस्थता से देखें। गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है— मैं उदासीन की भाति आसीन हूँ, कर्मों में अनासक्त हूँ। इसलिए वे मुझे नहीं बाधते। अत सवेदना व्यक्ति का मूल स्वभाव नहीं है, ज्ञाता-द्रष्टा भाव का विकास ही उसका उदय है।

अभय

भय की भावना को निरस्त करने के लिए अभय की भावना का विकास आवश्यक है। आज प्राय हर व्यक्ति भयाक्रान्त है। क्योंकि सर्वत्र प्रमाद है, असत्य है, विस्मृतिया हैं। भगवान् महावीर ने कहा है—प्रमादी को सब तरफ से भय होता है, अप्रमादी भयमुक्त है। प्रमाद इसलिए है क्योकि केवल बुद्धि का जागरण है, प्रज्ञा सोई हुई है। बुद्धि भय को मिटा नहीं सकती बल्कि भय को और अधिक सूक्ष्मता से पकड़ लेती है। इसलिए प्रज्ञाविहीन व्यक्ति मे बुद्धि जितनी प्रखर होगी उतना ही अधिक भय होगा। उदाहरणत सामान्य व्यक्ति कम भयभीत है पर एक पढे-लिखे व्यक्ति एव वैज्ञानिक आदि के सामने अनेको सकट हैं। उनके सामने ऊर्जा का सकट है, आबादी का सकट है, पर्यावरण का सकट है, परमाणु अस्त्रो का सकट है, जबकि सामान्य व्यक्ति इन भयो से परे है। भयभीत व्यक्ति सुरक्षा की कोशिशें करता है। विकसित राष्ट्र भयभीत है कि एक दिन उनका विकास ही उन्हे न लील जाये। अविकसित राष्ट्र इसलिए भयभीत हैं कि उनकी गरीबी उन्हे युद्धों की ओर धकेल रही है। समृद्ध को धनरक्षा का भय है, गरीब पेट की आग से भयभीत है।

भय-अभय का वैज्ञानिक आधार

भय के कारण अनुकम्पी नाडी तत्र प्रभावित होता है, जिसका परिणाम है उत्तेजना। जबकि अभय से परानुकम्पी नाडी तत्र सक्रिय होता है जिसका परिणाम है शाति, सुख का अनुभव। व्यक्ति के जैसे भाव होते हैं उसकी मुद्रा भी उसी तरह की हो जाती है। भय से व्यक्ति की एड्रिनल ग्रथि सक्रिय होती है और उसके स्राव व्यक्ति को आक्रामक बना देते हैं।

अभय कैसे बनें

अभय बनने के लिए अभय की भावधारा विकसित करनी होगी जिसका सशक्त साधन है—अभय की अनुप्रेक्षा। अभय की अनुप्रेक्षा द्वारा अभय की तरंगें उत्पन्न होती हैं जो भय की तरंगों को निरस्त करती है। गेल्वेनोमीटर द्वारा व्यक्ति के असत्य को भय की तरगों द्वारा ही पकड़ा जाता है।

अभय के लिए सर्वप्रथम शरीर के भय से मुक्ति आवश्यक है। शरीर के प्रति ममत्व भय का प्रमुख कारण है। शरीर के प्रति ममत्व का विसर्जन अभय का द्वार है। जितनी सहिष्णुता सधती है उतना ही अभय का विकास होता चला जाता है।

अभय और अहिंसा

कायर व्यक्ति कभी भी अहिसक नहीं बन सकता। कायरता व्यक्ति की मानसिक कमजोरी है जो हिंसा को बढावा देती है। निर्भयता अहिंसा का प्राण है। अभय व्यक्ति ही अहिंसा का पालन कर सकता है।

मृदुता

मान के संवेग को नष्ट करने के लिए मृदुता का अभ्यास जरूरी है। मृदुता (कोमलता) सामूहिक जीवन की सफलता का सूत्र है। मृदु स्वभाव में लोच होती है जिससे इस स्वभाव का व्यक्ति किसी भी वातावरण को अपने अनुकूल बना लेता है। वह न केवल अपने जीवन को बल्कि आसपास के वातावरण को भी सरस बना देता है। जो कार्य कठोर अनुशासन से नहीं होते, मृदुता से सहज ही हो जाते हैं।

मनुष्य की तीन बडी दुर्बलताए हैं—क्रूरता, विषमता एव स्वय को हानि पहुँचाने की वृत्ति। इनमे क्रूरता का पहला स्थान है। क्रूरता के कारण ही शोषण मिलावट, पशुवध, वनो की कटाई, दहेज हत्याए, आदि अनेक आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक अपराध होते हैं। वर्तमान की अधिकाश समस्याए व विरोधाभास क्रूरता के कारण हैं। व्यवहार परिवर्तन या परिष्कार का अर्थ है—व्यवहार मे क्रूरता की जगह कोमलता-मृदुता का विकास। यही प्रशस्त जीवन है।

मैत्री

विश्वबधुत्व का पहला सूत्र है मैत्री। ईसा ने कहा शत्रु के साथ भी मैत्री करो। महावीर ने कहा—किसी को शत्रु मानो ही मत। यद्यपि व्यक्ति-व्यक्ति मे भेद है। उनमे रूचि, चिन्तन, व्यवहार, व्यवस्था, रहन-सहन, खान-पान आदि भेद है, लेकिन इन भेदो के कारण शत्रुता पनपे, यह अवाछनीय है। भगवान् महावीर ने कहा—दूसरो के साथ बुरा व्यवहार करने से स्वय तुम्हारा ही अनिष्ट होता है। मैत्री की भावना से कभी कोई किसी का अनिष्ट नहीं करता। मैत्री भाव का साधन स्वय को कष्ट मे डाल देगा पर दूसरों को कष्ट नहीं दे सकता।

मानवीय संबंधों की पहली कठिनाई—शत्रुता है। शत्रुता का कारण दोषारोपण है। हम दूसरों से द्वेष ही नहीं रखते अपितु स्वयं के कर्त्तव्य को भुलाकर दूसरों में दोष देखते हैं। व्यक्ति दूसरों के भय के कारण उनसे शत्रुता रखता है जबकि अभय से मैत्री फलित होती है। "मेरा सबके साथ मैत्री भाव है, कोई मेरा शत्रु नहीं है" जैसे-जैसे यह भाव विकसित होता है सर्वत्र प्रसन्नता व्याप्त हो जाती है। मैत्री का सम्पूर्ण अर्थ केवल प्रेम ही नहीं है, अपितु सबके अस्तित्व को स्वीकार करना है। जो है जैसा है, उसे वैसे ही स्वीकार करना, सत्यान्वेषी बनना है। मैत्री का विराट् रूप जब सामने आता है तो द्वेष रहता ही नहीं है। सभी प्राणियो को अपने समान समझने का भाव जागृत हो जाता है।

मानवीय सबधो की दूसरी कठिनाई कठोरता है। हमे छोटो के साथ कठोर व्यवहार करना चाहिए—इस धारणा ने सामजिक सपर्क व सबधो मे दरार पैदा कर दी है। हम यह भूल गए है कि मैत्री भाव के द्वारा आदमी को जितना प्रेरित किया जा सकता है उतना कठोरता से नहीं किया जा सकता। सद्भावना से तो पेड़-पौधे भी जल्दी विकसित होते हैं। इसलिए जीवन को सफल बनाने के लिए उसमे सौरभ व सरसता भरनी चाहिए।

करुणा

दूसरो के दु खो को दूर करने की इच्छा करुणा है। मानव स्वभाव की ऐसी इच्छाओ को हटाना जो दूसरो के लिए तथा अपनी खुशी के लिए हानिकारक हैं। करुणा इस चिन्तन का परिणाम है कि प्राणी कैसे दुखी है। दु खी, पीडित और त्रस्त व्यक्ति को देखकर जो करुणा का भाव जाग्रत होता है, वह यह सूचना देता है कि आपका चित्त कोमलता, मृदुता और प्रेम से शून्य नहीं है।

करुणा का सबध सवेदनशीलता से है। व्यक्ति मे जितनी संवेदनशीलता है उतना ही करुणा का विकास होगा। व्यक्ति में जितनी असंवेदनशीलता होगी, उतना ही वह क्रूर होगा। क्रूरता का कारण लोभ, सग्रहवृत्ति, अमानवीय दृष्टिकोण आदि है। क्रूरता का निदान है—मानवीय दृष्टिकोण का निर्माण,

आत्मौपम्य दृष्टि तथा प्रत्येक प्राणी को अपने समान समझने का दृष्टिकोण।

आजकल क्रूर व्यवहार को बड़प्पन समझा जाने लगा है। सत्ता और शक्ति के मद मे व्यक्ति छोटों के साथ क्रूर व्यवहार कर बडप्पन समझता है। इसी कारण रिश्वत व भ्रष्टाचार जैसी क्रूरताएं पनपती हैं। जब सत्ता और शक्ति का दुरूपयोग बन्द हो जाए, तब यह समझना चाहिए कि मानवीय दृष्टिकोण का विकास हुआ है और मानवीय दृष्टिकोण के निर्माण से ही छोटों के प्रति क्रूरता खत्म हो सकेगी। जब करुणा की ज्योति जलती है तब अन्याय मिट जाते हैं। इसलिए सामाजिक और आर्थिक स्वास्थ्य का मूल सूत्र है—करुणा।

करुणा का यह सिद्धान्त शासको के प्रति भी इसी तरह लागू होता है। यदि शासक दयालु और कृपालु नहीं हैं तो यह नैतिकता के प्रति हिंसा है। यह एक सामाजिक सच्चाई है कि जो सौभाग्यशाली हैं, समृद्ध हैं, शिक्षित है, वे असहायो के प्रति करुणा रखे। कल्याणकारी राज्य का सिद्धान्त भी इसी परोपकारिता के दर्शन पर अवलबित है। बुद्ध का जब निर्वाण हुआ तो वे निर्वाण के द्वार पर रूक गये और कहा—"जब तक सब प्राणियो का दु ख दूर नहीं होगा, तब तक मैं कैसे भीतर जाऊ," यह है जागतिक करुणा का प्रयोग। जिसका सम्पूर्ण जगत् मित्र है, उसकी करुणा भी जागतिक हो जाती है। बुद्ध के अनुसार विद्या और आचरण के मेल से ही बोधि प्राप्त होती है। मस्तिष्कीय गुणो का विकास विद्या है यह व्यक्ति का बौद्धिक पक्ष है जबकि करुणा आचरण है जो व्यक्ति का भावात्मक पक्ष है, जिसका सबध व्यक्ति के हृदय से है। जिस व्यक्ति के हृदय में अत्यधिक क्रूरता है, करुणा भावना का प्रयोग उसकी अभिवृत्ति को मोड सकता है।

विधायक चिंतन

विधायक चितन के बिना व्यक्ति सच्चाई के पास नहीं पहुँच सकता। निषेधात्मक दृष्टिकोण का व्यक्ति हर सच्चाई को नकारता जाता है। जिसका परिणाम होता है—निराशा, अनुत्साह, आवेग, कार्य से निवृत्ति व हिंसा। विधायक चितन वाला व्यक्ति सच्चाई के पास पहुँच जाता है जिसका परिणाम होता है—जीवन में सफलता व शाति।

व्यक्ति के चिंतन के दो पक्ष होते हैं— (1) समग्रता की दृष्टि और (2) व्यग्रता की दृष्टि। व्यग्रता का दृष्टिकोण एकाकी आग्रह है। व्यक्ति अपने ही आग्रह पर अड़ा हुआ रहता है। उसे अपने सिवाय हर व्यक्ति के विचार मिथ्या लगते हैं। इसलिए समग्रता के दृष्टिकोण के बिना उस व्यक्ति का हर निर्णय अपूर्ण होगा, आग्रही होगा। जिसका परिणाम होगा हिंसा, सघर्ष। समग्र दृष्टिकोण में विवाद की सभावना नहीं होगी क्योंकि उसके पास अनेकातिक दृष्टि है जिससे वह दूसरो के विचारो की सच्चाई को भी समझ सकता है।

विधायक चितन का दूसरा कोण है अनावेश। आवेश की स्थिति निषेधात्मक चितन की स्थिति है जिससे व्यक्ति को कई सामाजिक, आर्थिक समस्याओ का सामना करना पडता है। जबकि अनावेश की स्थिति स्वस्थ और तथ्यो पर आधारित है। इसलिए विधायक चितन की आवश्यक शर्त है अनावेश। प्रश्न है—हम क्रोध व अहकार पर नियत्रण कैसे करे? जब तक व्यक्ति मे सबध और विसबध की चेतना जागृत नहीं होगी तब तक अनावेश की स्थिति घटित नहीं होगी।

विधायक चितन का तीसरा कोण है—असशय। सशयशील चितन सभावनाओ को नकारता है जिससे उसका दृष्टिकोण आग्रही व रूढिवादी बन जाता है, वह सच्चाई को नहीं जान पाता। जबकि असशय की स्थिति का अर्थ है सभावनाओ का स्वीकार। अपने पुरुषार्थ, अपनी क्षमताओ व अपने कृतित्व पर विश्वास। इससे व्यक्ति सच्चाई के रास्ते सदैव खुले रखता है और कहीं भी सघर्ष की सभावना नहीं रहती।

विधायक चितन का चौथा कोण है—विरोधाभासो मे सगति ढूढना। एकाकी दृष्टिकोण का व्यक्ति हर विचार मे विरोध ही देखता है जिससे कलह या हिंसा की सभावना सदैव रहती है। जबकि विरोधाभासो मे सगति का पता लगाना विधायक चितन का परिणाम है। परस्पर विरोधी विचार-व्यवहार मे सर्वथा विरोध नहीं होता, इस कारण उनमें समन्वय के सूत्रो को खोजा जा सकता है।

विधायक चितन के लिए चित्त की एकाग्रता भी आवश्यक है। उच्छृखल चित्त अनेक समस्याए पैदा करता है। विधायक चितन चित्त की एकाग्रता को

फलित करता है।

विधायक चिंतन आसपास के परिवेश को अपने अनुकूल बना लेता है। वह हर विपरीत परिस्थिति या प्रतिकूल परिस्थिति में कोई न कोई ऐसे सूत्र ढूंढ लेता है जिससे विरोधी परिस्थिति या प्रतिकूल परिस्थिति में भी शांति से जीने का बहाना मिल जाता है।

प्रियता-अप्रियता के विचार विकृत विचार हैं जो हीनता व अहकार के कारण होते हैं जिससे व्यक्ति सत्य को नहीं पकड पाता। विधायक चितन समतापूर्ण विचारो पर आधारित रहता है जिससे वह सत्य को समग्रता से जान सकता है। समतापूर्ण व्यवहार वाला अभय के वातावरण में चितन करता है जिससे उसका चितन स्वस्थ रहता है। जबकि प्रियता-अप्रियता से ग्रसित व्यक्ति भय के वातावरण मे रहता है और उसका चितन भी कुठित हो जाता है, जो कई समस्याए पैदा करता है।

इसलिए विधायक चितन विकास व शाति का मार्ग है। हृदय परिवर्तन के सूत्रो मे इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। अभय, मैत्री, करुणा क्षमा, मृदुता आदि सभी विधायक भाव हैं जो व्यक्ति के निषेधात्मक भावों को बदलकर उसे अहिसक बनाने मे सक्षम होते हैं।

हृदय परिवर्तन का आधार

समस्त प्राणियों के स्वभाव के अध्ययन से हम सहज ही यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि मानवीय स्वभाव विशिष्ट है। मानवीय स्वभाव का अध्ययन— "मनुष्य क्या करता है" प्राय इसी से किया जाता है पर यदि हम मानवीय स्वभाव का वास्तविक अकन करना चाहते हैं तो हमें इस बात पर ध्यान देना होगा कि "मनुष्य क्या कर सकता है।" मनुष्य क्या करता है, इसका सबध मानवीय व्यवहार से है न कि स्वभाव से। प्राय हम ऐसा देखते हैं कि मनुष्य अपने स्वभाव के विपरीत व्यवहार करता है। इसलिए हमे इस ओर अपना ध्यान आकृष्ट करना होगा कि "वह क्या कर सकता है", इस प्रश्न का सीधा सबध मनुष्य की योग्यता और शक्ति से है जो अन्तत उसके स्वभाव से जुडता है।

सामान्यत ऐसी धारणा है कि हम साधारणत जो करते हैं वह हमारा स्वभाव है तथा जिसे हम स्वयं से अलग नहीं कर सकते। यदि हमारा यह व्यवहार बुरा और अपराधपूर्ण है तो हम क्रूर व हिंसक पशुओं के व्यवहार से कैसे स्वय को अलग मान सकते हैं। सामान्यत और सामान्य परिस्थितियो मे कोई व्यक्ति क्रूरता, झगडा, हत्या आदि नहीं करता क्योकि उसका स्वभाव ऐसा नहीं है। यदि मनुष्य को स्वभावत बुरा मान लिया जाय तो शिक्षा और प्रशिक्षण, कालेज और विश्वविद्यालय सभी अर्थहीन हो जायेंगे। सभी धर्म, नैतिकता, अध्यात्म आदि व्यर्थ हो जायेगे जिनका चरम उत्कर्ष मनुष्यता के उस स्तर की प्राप्ति है जहा पहुच कर कुछ भी प्राप्त करने को शेष नहीं रह जाता, सारी इच्छाए, कामनाए शात हो जाती हैं। इसलिए किसी भी सामाजिक परिवर्तन के लिए मनुष्य में आस्था और उसकी पवित्रता मे विश्वास अपेक्षित है। यदि किसी भी विचार और नैतिक आन्दोलन को पुनरुज्जीवित करना है तो उसका आधार मानवीय नैतिकता में अविश्वास करके हम किसी भी नैतिक विचार क्राति को सफल नहीं बना सकते। प्रो ए शिशाकिन ने

कहा है—"मार्क्सवाद यद्यपि पूजीपतियो, लालच, महत्त्वाकाक्षा, क्रूरता व अन्य सामाजिक बुराइयो को दूर करना चाहता है लेकिन वह मानवीय पवित्रता मे विश्वास करता है। भले ही उसका विश्वास ईश्वर में न हो।"

यद्यपि प्रारभिक अस्त-व्यस्त मनोविज्ञान मनुष्य की लडाकू वृत्ति की ओर सकेत करता है पर इसका कोई वैज्ञानिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। डार्विन जिसे विकासवाद का जनक कहा जाता है, बडा आश्चर्य है कि वह भी शारीरिक शक्ति से नैतिक और आध्यात्मिक शक्ति को बडा मानता है। ग्रेट आइसलैंड, जोर्डन, मोहनजोदडो आदि पूर्व सभ्यताओ की खोजो मे किसी भी प्रकार के विध्वसक अस्त्रो के प्रमाण न मिलना इस तथ्य की ओर अधिक पुष्टि करते हैं कि मनुष्य स्वभावत बुरा नहीं है। यूनेस्को के प्रो मोन्टेग (Montague) ने अपनी शोध के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि मनुष्य जन्म से आक्रामक प्रवृत्ति का नहीं रहा है, यह उसकी उपार्जित आदतो का परिणाम है। सेवाइल घोषणा पत्र मे विश्व भर के विभिन्न क्षेत्रो के 20 विद्वानो ने यह घोषणा की है कि "यह कहना वैज्ञानिक दृष्टि से पूर्णत गलत और भ्रामक है कि युद्ध करने की प्रवृत्ति हमे हमारे पशु-पूर्वजो से मिली है कि युद्ध या अन्य हिसक व्यवहार मनुष्य की वशानुगत प्रवृत्ति है कि मानव विकास की प्रक्रिया मे हिंसात्मक व्यवहार को अन्य प्रकार के व्यवहारो की तुलना मे प्रधानता दी गई है कि मानव मस्तिष्क हिसक होता है कि हिसा का कारण हमारी उस ओर मूल प्रवृत्ति का होना है या कोई एकल अभिप्रेरणा है।"

अत जब हमे मानवीय पवित्रता मे विश्वास हो जाता है या जब हम यह स्वीकार कर लेते हैं कि मनुष्य स्वभावत बुरा नहीं है और जो बुराइया मनुष्य मे हैं वे सब आगन्तुक हैं, अर्जित हैं तब परिवर्तन का एक आधार तैयार हो जाता है। क्योकि व्यक्ति के जो विभाव, जिनकी आत्माए रुग्ण हैं, जो आसक्ति के व्यामोह मे फसे हैं उन्हे परिवर्तन के प्रयासो से परिवर्तित किया जा सकता है। कोई भी व्यक्ति मनुष्य के परिवर्तन और उसके स्वभाव की लोचशीलता मे सदेह नहीं कर सकता।

परिवर्तन के कई पहलू हैं पर अहिंसात्मक प्रयोगो के अन्तर्गत "हृदय परिवर्तन" परिवर्तन का सशक्त माध्यम है। क्योकि यह पद सामान्यत व्यक्तित्व मे सम्पूर्ण, सम्यक् और स्थाई परिवर्तन के लिए प्रयुक्त होता है। जैसे ही किसी व्यक्ति का वास्तविक हृदय परिवर्तन होता है प्राय सपूर्ण व्यक्तित्व का पुनर्जन्म

हो जाता है। उसके व्यक्तित्व मे यह परिवर्तन शारीरिक शक्ति या दबाव से नहीं लाया जा सकता है। विनोबा भावे ने एक पत्र में लिखा है कि "जो यह सोचते हैं कि मानवीय व्यवहार और मस्तिष्क में परिवर्तन नहीं लाया जा सकता, वे मानवीय मनोविज्ञान से अनभिज्ञ हैं तथा मानवीय स्वभाव को जड़ समझते हैं। एक बार जब व्यक्ति की अनुभूतिया बदल जाती हैं तो वह इन परिवर्तित अनुभूतियो जैसा ही व्यवहार करने के लिए बाध्य हो जाता है।

जी डब्ल्यू आलपोर्ट (G.W Allport) ने अपनी पुस्तक "Personality" में एक ऐसे लडके के बारे में लिखा है जिसके व्यवहार और अध्ययन की आदतों में अध्यापक द्वारा उसकी बुद्धि पर टिप्पणी किये जाने के बाद अचानक आशा के विपरीत परिवर्तन आया था। प्रो बेगबी और प्रेट (Prof Bagbie and J B Pratt) ने ऐसे बहुत से पियक्कडो के उदाहरण दिये हैं जो वर्षों से पीते थे पर एक ही आघात ने उन्हें पीने की लत छुडा दी। इतिहास भी ऐसे हृदय परिवर्तन का साक्षी रहा है—जैसे सम्राट् अशोक, बाल्मीकि, अगुलीमाल, चबल के अपराधी आदि-आदि। यह बदलाव कोई जादू नहीं है पर प्रयोग पर आधारित प्रक्रिया है जो सुझाव, भाव, व्यवहार अनुकरण आदि मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तो पर आधारित है। कोई भी विचार सर्वप्रथम सामान्य तरीके से व्यक्ति में आते हैं फिर वे अवचेतन मे उतर कर धीरे-धीरे व्यक्ति के भाव और कार्यों मे उतर जाते है, तथा अन्तत व्यक्ति की रूचि बन जाते हैं। जिस व्यक्ति से वह घृणा करता था उससे प्यार करने लगता है तथा जिन बुराइयो को उसने अपना रखा था उनसे उसे घृणा हो जाती है। यह आघात जहा एक ओर हृदय को स्पर्श करता है वहीं दूसरी ओर मस्तिष्क को भी मनवाता है।

यद्यपि यह सही है कि मर्मस्पर्शी आघात मात्र से व्यक्ति का रूपान्तरण घटित हो जाता है, किंतु कुछ विद्वानो का यह भी मत है कि इस प्रकार के रूपान्तरण को स्थायी बनाने के लिए व्यक्ति के परिवेश को भी बदलना आवश्यक है। परिस्थितियो को बदले बिना रूपान्तरण स्थायी नहीं बना रह सकता। एक बार जब विनोबा जी से पूछा गया कि क्या आपके उपदेशो, आपकी प्रेरणाओ से सार्वभौमिक हृदय परिवर्तन आ जाएगा? विनोबा का उत्तर था—केवल मेरे शब्दों से नहीं बल्कि परिस्थितियो मे परिवर्तन से हृदय परिवर्तन आएगा।" हम समाज की पृष्ठभूमि को नकार नहीं सकते। समय के बहाव व इतिहास को नकार नहीं सकते। हम शून्य में नहीं सोच सकते। हमारी

सोच में हमारा व्यवहार, हमारी मान्यताए और सामाजिक, सांस्कृतिक व्यवहार भी प्रभाव डालते हैं।

जैनदर्शन ने हृदय परिवर्तन की दृष्टि को एक नया आयाम दिया है। जैनदर्शन ने मानवीय पवित्रता मे विश्वास के आधार को अपने अस्तित्ववादी चितन से और अधिक सूक्ष्मता प्रदान की है। जैनदर्शन का मानना है कि हृदय परिवर्तन के लिए सर्वप्रथम हमें व्यक्ति स्वातन्त्र्यय को स्वीकार करना ही होगा। इससे भी आगे बढ़ते हुए जैनदर्शन कहता है—हम केवल व्यक्ति स्वातत्र्यय को ही महत्त्व न दे बल्कि हमें प्राणी स्वातत्र्यय की सोच तक आगे बढना है। यदि स्वतन्त्रता को केवल मनुष्यो तक ही सीमित रखा गया तो आज विश्व मे जो कुछ भी घटित हो रहा है वह होना ही है क्योकि व्यक्ति स्वातत्र्यय ने इस सोच को विकसित किया है कि मनुष्य भोक्ता है और अन्य सभी उसके लिए भोग्य सामग्री हैं। इसी चितन ने आज पर्यावरण की समस्या से विश्व को आक्रात बनाया है। मनुष्य आये दिन प्राकृतिक ससाधनो का दोहन करता जा रहा है और परिणाम सामने हैं अकाल, भुखमरी, कहीं अतिवर्षा तो कहीं वर्षा का अभाव, विकलागता आदि-आदि।

अत हमे इस चितन को आगे बढाना होगा कि अस्तित्व की दृष्टि से सभी प्राणी समान हैं तथा सभी का स्वतत्र अस्तित्व है। इसलिए मनुष्य के लिए अन्य सभी प्राणी भोग्य नहीं हो सकते। जिस दिन यह चितन मनुष्य के स्वभाव मे प्रवेश पा लेगा उसी दिन गरीबी, असतुलित विकास, लिप्सा, पर्यावरण आदि गभीर समस्याओ से वह उबर जाएगा। और यह चितन वस्तुत हृदय परिवर्तन का सशक्त आधार भी बन सकेगा। आवश्यकता है सापेक्ष चितन और सापेक्ष व्यवहार की। अकेला मनुष्य अब और अधिक नहीं भाग सकेगा, परिस्थिति उसके कदमो मे बेड़िया डाल देगी। समता पर आधारित व्यवस्था व परस्परता ही अब उसे गति प्रदान कर सकती है और यह तब ही सभव है जब हम अस्तित्ववादी चितन को आगे बढ़ाये और उसे स्वभावगत करे। तभी पर्यावरण के सकट से जूझ सकेगे और तब ही हृदय परिवर्तन का मजबूत आधार तैयार हो सकेगा।

आवश्यक है जीवनशैली में परिवर्तन

जीवन जीना एक बात है। कैसा जीवन जीना, यह सर्वथा भिन्न बात है। बहुत लोग ऐसे होते हैं जो जीते हैं पर क्यो जीते है? कैसे जीते हैं? आदि प्रश्नो पर कभी विचार ही नहीं करते। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो निश्चित उद्देश्य के साथ जीते हैं और विशिष्ट शैली से जीते हैं। ऐसे व्यक्तियों का युग आने वाली सदियो का मानदण्ड बन जाता है। वे केवल समय को नहीं जीते, उनके जीवन मे सस्कृति होती है, सभ्यता होती है और एक परम्परा होती है जो पीढ़ी दर पीढी सक्रान्त होती है और अपने युग की स्थायी पहचान बन जाती है।

वर्तमान युग हिसा की बहुलता का युग है क्योकि विश्व मे हिंसा के क्रमबद्ध प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था है। अहिंसा के विकास के लिए भी इसी प्रकार के क्रमबद्ध व वैज्ञानिक आधार पर प्रशिक्षण की अपेक्षा है। वर्तमान में अहिसक-समाज-रचना की दृष्टि से अनेक व्यवहारिक प्रयोग किये जा रहे हैं। इसी क्रम मे जीवन शैली मे परिवर्तन द्वारा अहिंसा के प्रशिक्षण की पद्धति भी है। अहिसा पर आधारित जीवन शैली के ग्यारह सूत्र हैं जिनका विस्तृत विवेचन इस प्रकार है—

1. व्यवहारिक अहिंसा या हिंसा निषेध

आधुनिक विचारधारा जीवन के लिए संघर्ष को आधार मानती है तथा दूसरी तरफ विकास के लिए इच्छा के आधिक्य को आवश्यक समझती है। अर्थात् सघर्ष और इच्छा विस्तार आधुनिक जीवन शैली के विशिष्ट अग हैं। प्राचीन परम्परा भी हिंसा और परिग्रह को जीवन का आधार मानती रही है।

अहिंसक जीवनशैली जीवन का आधार सघर्ष को नहीं अपितु अहिंसा, प्रेम, करुणा और मैत्री को जीवन का आधार मानती है। यद्यपि जीवन के लिए हिंसा अनिवार्य है पर हिंसा की स्वीकृति मे अन्तर है। हिंसा जीवन की

अनिवार्यता हो सकती है, पर जीवन का आधार हिंसा नहीं हो सकती। शारीरिक स्तर पर हिंसा अनिवार्य है पर मानसिक स्तर पर हिंसा का समर्थन नहीं किया जा सकता।

हिंसा के चार प्रकार जैनागमो मे स्वीकृत किये गये हैं—आरम्भजा, विरोधजा, सकल्पजा और उधोगी। कृषिकार्य आदि से सम्बन्धित हिसा को आरम्भजा हिंसा कहते हैं। जीवन यापन की दृष्टि से यह हिंसा अनिवार्य है।

अस्तित्व सुरक्षा के लिए, आक्रमण से सुरक्षा के लिए की गई हिंसा विरोधजा हिंसा है। इसे भी कुछ सीमा तक स्वीकृत किया जा सकता है।

आक्रामक मनोभाव या बिना प्रयोजन की गई हिंसा सकल्पजा हिंसा है, इसे कभी भी स्वीकृत नहीं किया जा सकता।

व्यापार आदि से संबधित हिंसा उधोगी हिंसा है।

अहिंसक जीवन शैली अहिंसा महाव्रत का नहीं, बल्कि हिसा के अल्पीकरण का सूत्र देती है जो सामाजिक शाति, जीवन विकास व अस्तित्व की स्थिरता के लिए आवश्यक है। हिसा की उन्मुक्तता महाहिसा की ओर प्रयाण है और इससे सस्कृति को खतरे पैदा होते रहे हैं। सस्कृति के विकास एव केन्द्रित हिंसा के प्रतिरोध के रूप मे ही हिसा के अल्पीकरण का स्वर मुखर हुआ है। कुछ राजनीतिक पद्धतिया, धार्मिक मच आदि विचारो के स्तर पर हिसा की अनिवार्यता को मानते हैं तथा उनके अनुसार अपना विचार या धर्म बलात् किसी पर थोपा जा सकता है। जैन जीवनशैली स्वस्थ समाज रचना के लिए इसे अनावश्यक व अवाछनीय मानता है। इसलिए जैन जीवनशैली मूलत हिंसा के अल्पीकरण का सिद्धान्त देती है जो साधन शुद्धि के सिद्धान्त का ही विकास है।

2. अनाक्रमण

आक्रमण करना एक मनोवृत्ति है। इस मनोवृत्ति का उद्‌भव भय के कारण होता है तथा क्रोध, लोभ, क्षोभ आदि आक्रमण के हेतु बनते हैं। व्यक्ति किसी को क्षति पहुचाने या सुरक्षा के लिए आक्रान्ता बन जाता है। सुख-सुविधाओ का विस्तार, भविष्य की असुरक्षा, लिप्सा आदि व्यक्ति को आक्रामक बना देते हैं।

व्यक्ति के आक्रान्ता बनने के चार कारण स्थानाग सूत्र में दिये गये हैं—

1 अनर्जित सुखो के अर्जन के लिए।

2. अर्जित सुखों के सरक्षण के लिए।

3. अनर्जित भोगो के अर्जन के लिए।

4. अर्जित भोगों के संरक्षण के लिए।

इनमें जो व्यक्ति सहायक बनते हैं वे आत्मीय बन जाते हैं और दूसरे विरोधी। स्वत्व और परत्व की यह मनोवृत्ति ही व्यक्ति को आक्रान्ता बना देती है।

प्रत्याक्रमण न करना आदर्श है, पर व्यवहार में यह भी ठीक है कि व्यक्ति या राष्ट्र यह सकल्प करे कि मैं किसी पर आक्रमण नहीं करूगा और न आक्रामक नीति का समर्थन ही करूगा। ऐसी नीति असमानता व घृणा की जगह समानता, सहयोग व शाति को बढाती है।

3. विध्वसात्मक प्रवृत्तियो में भाग न लेना

तोड-फोड़ व आतकवाद वर्तमान समय की ज्वलत समस्या है। व्यक्ति अल्पकालीन लाभ के लिए, अपनी बातो को मनवाने के लिए, सरकार पर दबाव डालने के लिए विध्वसात्मक प्रवृत्तियों मे सलग्न हो जाता है, जिससे राष्ट्रीय सम्पत्ति की हानि होती है ससाधनो का सही उपयोग नहीं हो पाता तथा राष्ट्रीय विकास अवरुद्ध हो जाता है। आज हिसक आन्दोलनो से कई राष्ट्र समस्या ग्रस्त है। ऐसी प्रवृत्तियो मे भाग लेना समाज या राष्ट्र के लिए तो घातक है ही, व्यक्ति स्वय के लिए भी घातक है। पजाब, कश्मीर, बम्बई आदि के काण्ड इसके ज्वलत उदाहरण हैं।

अहिंसक जीवनशैली व्यक्ति को यह बताती है कि वह ऐसी हिंसक व विध्वसात्मक प्रवृत्तियो मे भाग न ले।

4. मानवीय एकता में विश्वास

मानवीय एकता मे विश्वास का अर्थ है मानवीय अस्तित्व की समानता का विश्वास। अस्तित्व की अपेक्षा से समूचा विश्व एक है और व्यक्ति की अपेक्षा से प्रत्येक पदार्थ स्वतत्र। अनेकता मे एकता का चिन्तन ही मानवीय एकता मे विश्वास है। आज विडम्बना है कि मानव को धर्म, वर्ण, जाति, राष्ट्र आदि के आधार पर बाटा जा रहा है। जहा बटवारा है वहां एकता खण्डित हो जाती है और स्वार्थ प्रमुख हो जाते हैं तब अनेक समस्याए पैदा होती हैं। न केवल राष्ट्रीय स्तर पर बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी। छुआछूत, रगभेद,

उच्चवर्ग-निम्न वर्ग आदि समस्याए इसी के परिणाम हैं।

इसलिए केवल मनुष्य को ही नहीं अपितु सभी प्राणियों को समान समझना आचार शास्त्र का नियम है। सत्य की सापेक्ष दृष्टि से देखा जाए तो—

1. प्रत्येक मनुष्य अस्तित्व की दृष्टि से समान है।

2 प्रत्येक मनुष्य सामर्थ्य की दृष्टि से समान है।

3 जैव विज्ञान के आधार पर मनुष्य समान है।

मनुष्य जाति एक है, इस सिद्धान्त की स्वीकृति के पश्चात् क्या किसी को मारना, सताना स्वय को तिरस्कृत करने का प्रयत्न नहीं है? जैन आगमो मे कहा गया है—

पुरुष ! जिसे तू मारने योग्य मानता है, वह तू ही है
जिसे तू परिताप देने योग्य मानता है, वह तू ही है
जिसे तू दास बनाने योग्य मानता है, वह तू ही है।

इस आत्मतुला की भूमिका पर विश्व के सब प्राणियों की एकता प्रतिपादित होती है। सब मुझमे हैं, मैं सबमे हू—इस विराट्ता मे ही मानवीय एकता प्रतिबिम्बित हो सकती है।

जाति, वर्ण, वर्ग, धर्म आदि कृत्रिम भेद हैं। इन्हे मुख्य मानकर प्रेम, सद्भाव, विश्वास व न्याय की हत्या मानवीय मूल्यो की हत्या है। भेद की कल्पना प्रकृतिगत नहीं, मानव द्वारा निर्मित है। इन आरोपित भेदो को मानकर किसी को हीन मानना स्वय की हीनता है। केवल अपने ही दृष्टिकोण को महत्त्व देना, स्वार्थसिद्धि के लिए राष्ट्र की भी परवाह न करना आदि सत्य से मुह मोडना है। अहिंसक जीवनशैली इन भेदों को दूरकर मानवीय एकता मे विश्वास की बात करती है। जब एक व्यक्ति परिवार मे भिन्न-भिन्न वर्ण, रूचि, स्वभाव वाले लोगो के साथ रह सकता है तो वह अन्य लोगो के साथ क्यो नहीं रह सकता।

5. सर्वधर्म सहिष्णुता

धर्म जीवन का शाश्वत मूल्य है। सत्य साक्षात्कार या आत्म साक्षात्कार की प्रक्रिया का नाम धर्म है। इस दृष्टि से धर्म एक अखण्ड चेतना है, इसे विभक्त करना कठिन है। सहिष्णुता का प्रश्न अनेकत्व के प्रश्न से ही उपस्थित होता है। यदि व्यवहारिक दृष्टि से देखे तो भी धर्म के अनेक भेद क्षमा दया, प्रेम, करुणा, सत्य, तप आदि को ध्यान मे रखकर धर्म के अनेक रूप सामने

आयें तो भी उनमें मतभेद नहीं होगा। मतभेद है सम्प्रदायों में। धर्म ने अपने व्यापक अर्थ को खो दिया है, वह सम्प्रदाय के अर्थ में रूढ़ हो गया है। सम्प्रदाय का अस्तित्व विचार भेद की परिणति का ही परिणाम है। किसी भी देश में अनेक विचार व मत होना कोई समस्या नहीं। समस्या है अपने को सर्वोच्च मानकर दूसरो को छोटा मानना। असद्भावो के बीजों का वमन यहीं से होता है।

हर धर्म सत्य की अभिव्यक्ति करता है। यदि सत्य के सापेक्ष दृष्टिकोण को मान लिया जाए तो सभी धर्म सत्य के एक अश को प्रकट करते हैं। केवल उसी विशिष्ट दृष्टिकोण को ही सत्य मानकर दूसरे धर्मों के दृष्टिकोण को ठुकराया जाना धार्मिक सघर्षो का प्रमुख हेतु बनता है। अहिंसक जीवनशैली यह बतलाती है कि सापेक्ष दृष्टि से सभी धर्म सत्य हैं, इसलिए हमें सभी धर्मो के प्रति सहिष्णु बनना चाहिए। हर धर्म की अपनी विशिष्टता है—जैनो की अहिंसा बौद्धो की करुणा, ईसाइयो की सेवा, वेदो का आचार अपने आप मे विशिष्ट है। इसलिए हमे सभी धर्मों के अच्छे तत्त्वों के प्रति उदार रहना ही चाहिए। सभी धर्मो के लक्ष्य श्रेयात्मक हैं, बाह्य स्वरूप मे भिन्नता हो सकती है। इसलिए हर धर्म के प्रति आदर व सहिष्णु बनना हमारा कर्तव्य है।

6. व्यवहार व व्यापार में प्रामाणिकता

सत्य के दो रूप है—आध्यात्मिक और सामाजिक। आध्यात्मिक सत्य व्यक्तिगत होता है। कोई भी आत्मनिष्ठ व्यक्ति असत् आचरण नहीं करता। असत् आचरण का अभाव ही प्रामाणिकता है। जबकि सामाजिक सत्य कहता है—एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के साथ व्यवहार यथार्थ की स्वीकृति के आधार पर हो, यही व्यवहारिक प्रामाणिकता है। इसके तीन मापदण्ड हैं—

व्यवहारिक प्रामाणिकता मे प्रवचना (कपट) नहीं होती।

व्यवहारिक प्रामाणिकता मे व्यवस्था का अतिक्रमण नहीं होता।

व्यवहारिक प्रामाणिकता में अतिरिक्त लाभ पाने की इच्छा नहीं होती।

व्यक्ति उपर्युक्त तीनो मापदण्डो का पालन करता है तो इससे वह स्वय तो लाभान्वित होता ही है, कुछ लाभ समाज व राष्ट्र को भी मिलता है। वर्तमान में प्राय यह देखा जाता है कि व्यक्ति लोभ के कारण, क्षणिक लाभ के लिए अप्रामाणिक बन जाता है। इसी का परिणाम है कि व्यक्ति मिलावट, झूठा, तौल-माप, चोर बाजारी, रिश्वत, राज्य निषिद्ध व्यापार जैसे कार्यों में लिप्त

होता जा रहा है। जब तक व्यक्ति असीम इच्छाओं का अल्पीकरण न करे, लोभवृत्ति का शमन न करे, तब तक यह सम्भव नहीं कि व्यक्ति व्यापार और व्यवहार में प्रामाणिक बन सके। अप्रामाणिक व्यक्ति स्वय अपना ही अहित नहीं करता, वरन् वह सामाजिक, राष्ट्रीय मूल्यो की हत्या करता है।

स्वय की प्रामाणिकता व्यक्ति को तो आत्मतोष देती ही है, बल्कि उसे कई उलझनो से भी बचा लेती है तथा समाज के लिए भी वह शिष्टता व प्रगति का मापदण्ड बनता है। दीर्घकालीन सफलता भी उन्हीं को मिलती है जो प्रामाणिक रहते हैं। अहिंसक जीवनशैली अप्रामाणिकता के आवेग पर नियन्त्रण की बात करती है।

7. आत्म संयम का विकास

भोगवादी सस्कृति का मूल आधार असयम है। असंयम के कारण ही विश्व मे अनेकानेक समस्याए बढ़ती जा रही है। असयम ने मनुष्य को सुविधावादी बनाया है और सुविधावाद बनाये रखने के लिए वह दिनोदिन सुविधाए प्रदान करने वाली सामग्री का उत्पादन व उपभोग कर रहा है जिससे न केवल ससाधनो का असीमित दोहन हो रहा है बल्कि पर्यावरणी प्रदूषण के भी खतरे पैदा होते जा रहे हैं। असयम की प्रवृत्ति ने ही मनुष्य को शस्त्रास्त्र के उत्पादन व परीक्षण को प्रोत्साहन दिया है। मनुष्य की अनन्त इच्छाओ को कहीं तो विराम देना ही होगा, नहीं तो यह विश्व एक दिन अपने ही विकास के नीचे दबकर खत्म हो जाएगा। यदि सयम व आत्मानुशासन के द्वारा व्यक्ति की विवेक चेतना को जागृत नहीं किया गया तो व्यक्ति की इन्द्रियो की माग बढती ही चली जाएगी और फिर हर माग को सन्तुष्ट कर पाना असम्भव होगा। परिणाम होगा—सघर्ष, हिंसा।

गाधी जी भी आत्मसयम पर बल देते थे। खादी व स्वदेशी वस्तुओ का प्रयोग आत्म सयम की ही दिशा मे एक प्रयास था। ब्रह्मचर्य की साधना भी सयम का ही एक प्रयास है जिससे जनसख्या नियन्त्रण सम्भव हो सकता है।

यह आवश्यक है कि वृत्तियो का सयम व विवेकपूर्वक शोधन किया जाए। वृत्तियों के दमन से इच्छाए व वासनाए समाप्त नहीं होती, वे अवचेतन में रहती हैं और अवसर पाकर फिर उभर सकती हैं। दमन मे न वृत्तियों का शोधन है और न विवेक चेतना का जागरण। जबकि संयम वृत्तियों को दबाने की

प्रक्रिया नहीं अपितु वृत्तियों के शोधन की प्रक्रिया है। इसलिए गीता में भी आत्मसंयम पर बहुत अधिक बल दिया गया है। फ्रायड वृत्तियों के दमन की बात कहता है। वृत्तियों को बदलने के लिए उनका उदात्तीकरण आवश्यक है, जो सयम द्वारा ही सम्भव है।

8. चुनावों में शुद्धता

लिंकन के शब्दो मे लोकतत्र का अर्थ है—जनता के लिए, जनता के द्वारा, जनता का शासन। लोकतन्त्र में मतदान का विशेष महत्त्व है। मतदान के व्यापक अधिकार से कुछ कठिनाइया भी पैदा होती हैं और उन देशो में यह कठिनाइया अधिक हैं जहा की जनता शिक्षित नहीं है, जहा गरीबी अधिक है तथा जहा लोगो के विचार विकसित नहीं हैं। शिक्षित देशो मे मतदान मे कोई गडबडी नहीं होती यह तो नहीं कहा जा सकता, पर वहा अज्ञान-जन्य कठिनाइयो से बचाव हो जाता है।

मतदान की पद्धति के साथ ही प्रलोभन की कड़ी जुड़ी हुई है। मतदान की स्वस्थ परम्परा मे सबसे बडी बाधा प्रलोभन की ही है और इसी का यह परिणाम है कि चुनावो मे अनैतिक साधनो का उपयोग बढ़ रहा है, लोगो को उनके मतो के अधिकार से जबरन वचित रखकर लोकतत्र की हत्या की जा रही है। चुनावो मे बढती हिंसा, मतदान केन्द्रो पर कब्जा आज चुनावो मे आम घटनाए बन गई हैं। चुनाव मे येन-केन-प्रकारेण सफलता प्राप्त करना ही उम्मीदवारो का लक्ष्य बन जाता है भले ही इसके लिए राष्ट्र को कितनी ही बडी कीमत क्यो न चुकानी पड़े।

अहिसक जीवनशैली का मानना है कि मतदान की स्वस्थ परम्परा मे विजय-पराजय की बात गौण है। मुख्य बात है व्यक्ति की योग्यता और विशेषता का अकन कर उसे निर्वाचित करना। मतदाता और प्रार्थी की कुछ दुर्बलताए इस मार्ग की बाधाए हैं। प्रार्थी (उम्मीदवार) को अपनी प्रतिष्ठा एव अह का मोह रहता है, इसी कारण प्रलोभन, भय और आतक की परिस्थितिया पैदा हो जाती हैं तथा उनके आगे मतदाता घुटने टेक देते हैं, अत हमे यह मानकर चलना चाहिए कि बुराई दोनो पक्षो की ओर से होती है। चुनाव परम्परा में विकृति नहीं हो तो योग्य व्यक्ति अनायास ही सामने आ जाएगा। जनतंत्रीय पद्धति स्वीकार करने के बाद प्रलोभन व अनैतिक तरीको से चुनाव जीतना अनुचित है। जो ऐसा करते हैं वे वस्तुत अपने विचारों व लोकतत्र की हत्या

करते हैं। वैचारिक मृत्यु व्यक्ति की सबसे बड़ी पराजय है। इसलिए लोकतंत्र की स्वस्थ प्रणाली मे बिजयी बनने के लिए प्रलोभन, भय या आतक की स्थिति पैदा करने का प्रश्न ही नहीं उठना चाहिए। इस हेतु निम्न बिन्दु विचारणीय है—

- कोई भी मतदाता प्रलोभन, जाति, धर्म आदि के आधार पर मतदान न करे। उम्मीदवार के गुणो के आधार पर मतदान करे।
- उम्मीदवार के विरुद्ध गलत प्रचार, अशांति व उपद्रव न करे तथा अवैध मतदान न करे।
- कोई भी उम्मीदवार भय, प्रलोभन, जाति, धर्म आदि के आधार पर मत लेने का प्रयत्न न करे।
- प्रतिपक्षी के विरुद्ध अश्लील प्रचार, अशाति व उपद्रव न करे।
- दलगत राजनीति की जगह लोकतत्र को प्राथमिकता मिले।
- लोकतत्र के प्रति व्यापक शिक्षा दी जाये।
- चुनावों के दौरान साधनशुद्धि पर बल दिया जाये।
- चुनावो मे शुद्धता के लिए राजनीतिज्ञो, मतदाताओ व पत्रकारो का क्रमबद्ध प्रशिक्षण हो।

9. सामाजिक कुरुढ़ियों को प्रश्रय न देना

जिस विचार, व्यवस्था की जब तक उपयोगिता है, तब तक उसका मूल्य और महत्त्व है। उपयोगिता समाप्त होने के साथ उसका मूल्य भी समाप्त हो जाता है, वह मूल्यहीन बन जाती है। मूल्य समाप्त होने के बाद भी उस परम्परा या व्यवस्था को चलाए रखने का प्रयत्न कुरूढि है। परिवर्तन सृष्टि का शाश्वत तत्त्व है। हर परिवर्तन के मुख्य हेतु हैं—देशकाल का परिवर्तन, विचार परिवर्तन। विचार परिवर्तन के साथ विकास होता है। हर नया विकास अपने से पूर्व की स्थिति का मूल्य समाप्त कर देता है। कठिनाईयां तब उत्पन्न होती हैं जब हम इन परिवर्तनो को स्वीकार नहीं करते तथा परम्पराओं का निर्वहन ही अपना ध्येय मानते हैं, भले ही वे मूल्यहीन हो गई हो। ऐसी ही परम्पराओ को कुरूढिया कहा जाता है।

समाज मे आज भी कई कुरूढ़िया विद्यमान हैं—जैसे दहेजप्रथा, पर्दाप्रथा, मृत्युभोज, बालविवाह, विधवाओ के साथ दुर्व्यवहार आदि-आदि। जो परम्पराए किसी काल मे किन्हीं कारणो से स्थापित की गई थीं, वे आज जड होकर

रह गई हैं, उनके निर्वहन का आज क्या औचित्य हो सकता है?

दहेजप्रथा के कारण न जाने कितनी अबलाओं की बलि भारतवर्ष में दी जाती है। धन के लोभी इन अबलाओं को पाशवीय यातनाएं देने से नहीं चूकते। इसी तरह का व्यवहार विधवाओं और विशेषकर बाल विधवाओं के साथ देखा जाता है। पर्दाप्रथा स्त्री शक्ति को न उभरने देना है जबकि बाल-विवाह उस बच्चे के प्रति अपराध है जो अभी नासमझ है। व्यक्ति ऋण लेकर भी मृत्युभोज करने के लिए विवश होता है।

अहिंसक जीवनशैली का मतव्य है—इन कुरूढ़ियो को अपने जीवन में प्रश्रय नहीं देना। इनसे व्यक्ति का अहित तो है ही, समाज का विकास भी अवरुद्ध हो जाता है। कुरूढियो के विरुद्ध जनमत जाग्रत किया जाना अपेक्षित है, इस हेतु शिक्षा का प्रसार भी आवश्यक है।

10. मादक पदार्थों के सेवन का निषेध या व्यसन मुक्त जीवन

मादक पदार्थों के सेवन की समस्या आज अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर चिन्ता का विषय बन चुकी है। आधुनिक समाज मे युवापीढी जीवन की समस्याओं से घबराकर मादक पदार्थों की शरण मे जा रही है, जो कि अत्यन्त चिन्तनीय है। अफीम, चरस, हेरोइन आदि अनेक ऐसे मादक पदार्थ हैं जो तस्करी के कारण सामान्य लोगो की पहुच से परे नहीं रहे है और एक बार इनके सेवन के पश्चात् मनुष्य इनका गुलाम बनकर रह जाता है, फिर उसे इन पदार्थों की आपूर्ति करने वाले व्यक्ति की जायज-नाजायज हर बात माननी पडती है और व्यक्ति अपराधो की तरफ उन्मुख हो जाता है। इन मादक पदार्थों की भयावहता का अन्दाज इस तथ्य से हो सकता है कि जब व्यक्ति इनके बहुत अधिक आदी बन जाते हैं तो ये मादक पदार्थ भी इन व्यक्तियों पर असर नहीं करते और ऐसे व्यक्तियों को जहरीले सापो द्वारा नशे के लिए कटवाया जाता है।

नशे का सेवन व्यक्ति भौगोलिक परिस्थितियो के कारण भी करता है, जैसे ठण्डे देशो मे मदिरापान आम बात है। कुछ विलासी मनोवृत्ति वाले लोग सोसाइटी के नाम पर मादक पदार्थों का सेवन प्रारम्भ कर देते हैं। गलत सम्पर्क के कारण भी मादक पदार्थों की आदत बन जाती है और कभी-कभी व्यक्ति अज्ञान के कारण भी इनका शिकार बन जाता है। मादक पदार्थों के कुपरिणामो के कारण आज प्रतिवर्ष लाखों व्यक्ति विश्व में मर रहे हैं तथा

मादक पदार्थों की तस्करी व व्यापार अन्तर्राष्ट्रीय जगत् की प्रमुख समस्या बन गया है। सरकारें भी आर्थिक लाभ के लिए इनकी रोकथाम के लिए कारगर उपाय नहीं कर पाती।

अहिंसक जीवनशैली का मानना है कि सरकार आर्थिक लाभ के लिए मादक पदार्थों के सेवन को प्रोत्साहन देती है जबकि सरकार का ध्यान आर्थिक लाभ की जगह देश की चारित्रिक गिरावट की ओर जाना चाहिए। यद्यपि मादक पदार्थों का सेवन व्यक्तिगत घटना है पर इससे पूरा समाज प्रभावित होता है। समाज मे नैतिक मूल्यो के पतन के पीछे तथा बलात्कार आदि घटनाओं का एक प्रमुख कारण मादक पदार्थों का सेवन है क्योकि इनके सेवन से, व्यक्ति की विवेक शक्ति खत्म हो जाने से वह पशुवत् हो जाता है। इसके दुष्परिणामों से बचने के लिए निम्न बिन्दु विचारणीय हैं—

(अ) लोगों को इनके दुष्परिणामो की जानकारी दी जाए।

(ब) मादक पदार्थों के विरोध मे प्रबल जनमत जुटाया जाए।

(स) शिक्षा का व्यापक प्रसार हो विशेषकर स्वास्थ्य शिक्षा का।

(द) परिवार का मुखिया या परिवार का सदस्य एक दूसरे को इन पदार्थो के सेवन से बचने के लिए बाध्य करे।

(य) कानून भी इनकी रोकथाम का एक सशक्त साधन बन सकता है। गाधी जी ने तो यहा तक कहा है कि मादक पदार्थों की बिक्री से यदि शिक्षा का प्रसार भी होता हो तो उससे अशिक्षा ज्यादा अच्छी है। इसलिए सरकारी प्रतिबन्ध तो आवश्यक ही है।

(र) हृदय परिवर्तन के लिए प्रयोग किया जाए।

11. पर्यावरणीय चेतना का विकास

सृष्टि का जीवन सापेक्ष है। इसमे जड और चेतन जितने पदार्थ हैं, वे एक दूसरे को प्रभावित करते हैं तथा एक दूसरे से प्रभावित होते भी हैं। धरती, हवा, पानी और वनस्पति सृष्टि-सतुलन के आधारभूत तत्त्व हैं, ये जैसे हैं, वैसे ही बने रहे तो सृष्टि का सन्तुलन बना रहता है। इनमें गड़बडी से यह सन्तुलन बिगडने का खतरा बना रहता है। खनिजो का अत्यधिक दोहन, कारखानो और चिमनियो से उठने वाला धुआ, प्राकृतिक व्यवस्था के साथ छेड़-छाड, परमाणु-परीक्षण आदि पर्यावरण को प्रदूषित करते हैं तथा इस कारण विश्व के सामने ओजोन परत को क्षति, भूमि के उपजाऊपन मे कमी,

नाभिकीय शीत, तापमान में वृद्धि, पशु-पक्षियों की कई प्रजातियों का लुप्त होना आदि समस्याएं पैदा हो रही हैं।

मानव सभ्यता की कहानी प्राकृतिक नियमों के उल्लंघन की कहानी है। जब से मनुष्य ने सुमेरिया, मिश्र और सिन्धुघाटी की सभ्यता को जन्म दिया, तब से वह प्राकृतिक नियमो के विरुद्ध किसी न किसी सघर्ष मे जुटा हुआ है। औद्योगिक क्रांति ने प्रकृति पर मानव जाति की विजय को भी साबित कर दिया है। पर्यावरण की जटिलताओं को समझे बिना उसने स्वार्थपूर्ति हेतु प्रकृति की व्यवस्था मे व्यापक दखलन्दाजी शुरू कर दी और इसी का परिणाम आज हमारे सामने है।

अहिंसक जीवनशैली का मानना है कि सृष्टि मे सन्तुलन बिगड़ने का मूल कारण असयम है। मनुष्य अपनी आकाक्षाओं का विस्तार करता गया और आकाक्षा पूर्ति के लिए पृथ्वी का बेहिसाब उत्खनन, जल का अधिक प्रयोग, औद्योगीकरण, वन कटाई, शिकार आदि करता गया और स्वय अपने ही पैर मे कुल्हाडी मारने लगा। इसलिए पर्यावरणीय सन्तुलन के लिए सयम की साधना अपेक्षित है। सयम से ही पर्यावरण की सुरक्षा हो सकती है और पर्यावरण की सुरक्षा मे ही मानव जाति व अन्य प्राणियो की सुरक्षा निहित है। पर्यावरणीय चेतना के विकास के लिए प्रायोगिक प्रशिक्षण भी आवश्यक है।

इस प्रकार अहिसक जीवनशैली मानवीय उच्छृखलताओ पर नियन्त्रण स्थापित कर सकती है। यह नियत्रण थोपा हुआ नहीं, अपितु स्वत स्वीकृत है तथा प्रयोग द्वारा व्यक्ति का हृदय परिवर्तन व विचार परिवर्तन सम्भव है। जिससे व्यक्ति की जीवन शैली मे व्यापक परिवर्तन हो सकता है तथा मनुष्यता के सामने जो व्यापक खतरे हैं, उनसे निपटा जा सकता है।

शांति सेना बदलता स्वरूप

विकास के साथ सघर्ष जुडा हुआ है। जटिलता तब होती है जब ये सघर्ष हिंसक हो जाते हैं अथवा शीतयुद्ध का रूप ले लेते हैं ऐसी परिस्थितियों में सघर्ष शमन आवश्यक हो जाता है। सघर्ष शमन के लिए हिंसक साधनों की अपेक्षा का बहिष्कार पूरी दुनिया करने को तत्पर है क्योकि उसे अपना अस्तित्व कायम रखना है। संघर्ष शमन के अहिंसक प्रतिकार के लिए वार्ता, सौदेबाजी, पच-निर्णय, सधिया, आत्म-शक्ति का प्रयोग प्रमुख साधन है। अहिंसक प्रतिकार के लिए कुछ अभिकरण भी कार्य करते रहे हैं। इनमे से प्रमुख हैं—गाँधी जी की शाति सेना, अमेरिका की पीस कोरप्स, सयुक्त राष्ट्र सघ के शाति पर्यवेक्षक आदि।

इतिहास में सर्वप्रथम गॉधी जी ने शाति सेना के लिए अहिंसक सेना शब्द का प्रयोग सन् 1922 मे किया था। गाँधीजी के जीवनकाल मे यह शाति सेना कोई विशेष कार्य नहीं कर पाई थी पर गाँधीजी कहा करते थे— "अहिंसामय हो जाने वाले व्यक्ति जिस बात की इच्छा करेगे, वह होकर रहेगी।" गाधीजी ने शाति सेना के निर्माण काल मे इसके तीन उद्देश्य निर्धारित किये थे—(1) सभी स्थानो पर तनावो को रोकना, (2) हिंसा हो जाए तो अहिंसक शक्ति से हिंसा का शमन और (3) अहिंसक विधायक शक्ति का निर्माण जिससे सहकारिता का विकास हो तथा सघर्ष विहीन समाज का विकास हो सके। यद्यपि दीर्घकाल मे शाति सेना को पुलिस व सेना का स्थानापन्न बनना था जिसके सैनिको के पास मात्र प्रेम और अहिंसा के शस्त्र ही होते। सन् 1957 मे विनोबा भावे ने गॉधीजी के मरणोपरान्त उनके शाति सेना के निर्माण के प्रयासो को आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया। विनोबा भावे ने शाति सेना के लिए जिन कार्यों का निर्धारण किया था, वे हैं— (1) भारतीय शहरी व ग्रामीण दगो को रोकना, (2) मध्यस्थ के रूप मे कार्य करना, (3) शाति की आवश्यकता

को महसूस करवाना, (4) शांति भंग करने वाली अफवाहों का पता लगाना, (5) दंगाइयों के बीच घुसकर अहिंसक प्रतिकार करना और (6) समाज के पुनर्निर्माण के लिए कार्य करना। इन कार्यों को लेकर चले विनोबा जी के प्रयत्नों के फलस्वरूप सन् 1960 तक शांति सेना के कई हजार सक्रिय कार्यकर्त्ता बन गये थे। 1961 में इस शाति सेना का अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप 'वर्ड पीस ब्रिगेड' के नाम से सामने आया। सन् 1981 में वर्ड पीस ब्रिगेड का पुनरुद्वार कर पीस ब्रिगेड इन्टरनेशनल का निर्माण हुआ। इन शांति सेनाओं द्वारा कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य भी किये गये जिनमें से प्रमुख हैं—1938 में हिंदू-मुस्लिम दगों को रोकना, 1963-64 मे दिल्ली पीकिंग शाति मार्च, 1964 मे पूर्वी भारत मे मुख्यत नागालैंड में अशाति को रोकना, 1972 में साइप्रस मे, 1983 मे निकारगुआ तथा 1985 मे गबैतमाला मे कार्य किया था।

विनोबा जी ने गॉधी जी को उद्धृत करते हुए लिखा है—"शांति सेना सशस्त्र फौज की तरह सिर्फ अशात दिनों मे ही नहीं बल्कि शाति के दिनों मे भी कार्य करेगी। शाति सैनिक सदा ऐसी रचनात्मक प्रवृत्तियों में लगे रहेगे, जिससे दगे होने ही असभव हो जाए। झगडे वाली कौमों को मिलाने के लिए मौके ढूंढना, शाति का प्रचार करना, ऐसा प्रचार करना जिससे उनका सपर्क उस क्षेत्र के स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध, हर किसी से हो सके। यह उन शाति सैनिकों का कर्त्तव्य होगा। ऐसी सेना किसी भी सकटकालीन परिस्थिति का मुकाबला करने और उसके लिए जितने लोगो की जरूरत होगी, उतने लोग जान की जोखिम उठाने के लिए तैयार रहेगे। कुछ सौ या कुछ हजार लोगो का ऐसा निष्कलक बलिदान दगो को हमेशा के लिए खत्म कर देगा। ऐसे पागलपन का सामना करने के लिए पुलिस और फौज की नुमाइश और उपयोग के मुकाबले मे तथा कुछ सौ युवक-युवतियों की भीड के क्रोध के सामने स्वेच्छापूर्ण आत्मसमर्पण करना जरूर कम खर्चीला समझा जाएगा।" ऐसे शाति सैनिकों के लिए क्षमा, सहनशीलता, करुणा, सद्भाव आदि गुण आवश्यक माने गये थे। निश्चित ही शांति सेना का यह स्वरूप आदर्श स्वरूप था तथा इसकी कार्य पद्धति भी वर्तमान शाति सेनाओं की तुलना में कई गुणा अहिंसक थी।

शांति सेना की इसी तर्ज पर बनी अमेरिका की पीस कोरप्स है जिसकी

स्थापना 1961 में राष्ट्रपति कैनेडी द्वारा की गई थी। अमेरिकी कांग्रेस द्वारा परिभाषित पीस कोरप्स के ये उद्देश्य निर्धारित किये गये थे--(1) विश्व शाति और मैत्री स्थापित करना, (2) इच्छुक राष्ट्रो व क्षेत्रों को स्वय-सेवक उपलब्ध करवाना, (3) इच्छुक राष्ट्रो व क्षेत्रों के लोगों की आवश्यकताओं के अनुरूप मानव शक्ति को अहिंसक प्रयोग के लिए प्रशिक्षित करने में सहायता देना, (4) अमेरिका के लोगो के प्रति अनुकूल दृष्टिकोण का निर्माण करना तथा (5) अमेरिका के लोगों के दृष्टिकोण को विश्व के अन्य लोगो के अनुकूल बनाना। पीस कोरप्स के सतत प्रयासों से दो महत्त्वपूर्ण लक्ष्यो की प्राप्ति हुई—(1) अमेरिकन नागरिक जो भिन्न उम्र व पृष्ठभूमि के हैं वे विकासशील देशों मे स्वेच्छा से सेवाए देते हैं, (2) तीसरी दुनिया मे लोगो व जीवन स्तर को बेहतर बनाने के लिए ज्ञान और चातुर्य के क्षेत्र मे सहयोग देते हैं।

इस शाति सेना मे स्वय-सेवको की भर्ती के लिए कम से कम 18 वर्ष की आयु है। इन स्वय-सेवको को कहीं भेजने से पूर्व इन्हें भाषा, सस्कृति, शहरो व गावो में रहने का प्रशिक्षण, आरामदेह तथा तग सकरी जगहो मे रहने का प्रशिक्षण दिया जाता है। कहने का तात्पर्य है—इन्हे इस प्रकार का प्रशिक्षण दिया जाता है कि वे सबधित राष्ट्र जहा इन्हे भेजा जाना है की भाषा, सभ्यता, सस्कृति, तथा विपरीत परिस्थितियों मे रह सकने की आदत के आदी हो जाए। ये स्वय-सेवक मेजबान राष्ट्र की सस्कृति, स्थानीय जीवन, भाषा आदि मे स्वय को एकदम खपा देते हैं तथा शाति और भाईचारे के लिए कार्य करते हैं। मेजबान राष्ट्र मे कार्यों के लिए ऐसी पद्धतियो का चयन करते हैं जिससे वहा की सस्कृति और पर्यावरण को कम से कम नुकसान हो। समाज लाभान्वित हो पर मूल्य नष्ट न होने पाये। स्वदेश लौटने पर इन स्वय-सेवको की प्राथमिक जानकारियो का उपयोग अमेरिकन नीतियो एव भविष्य निर्धारण में सहायक बनता है। इसलिए इन स्वय-सेवकों को उचित रोजगार सुलभ करवाया जाता है।

अमेरिकन पीस कोरप्स का उद्देश्य भी पूर्णत अहिंसक ही है। 1986 के आकड़ो के अनुसार इस वर्ष में पीस कोरप्स के 5616 स्वय-सेवक 61 राष्ट्रों में कार्य कर रहे थे।

वर्तमान शांति सेना का स्वरूप न तो गाँधी जी की शांति सेना जैसा ही है और न ही अमेरिकन पीस कोरप्स जैसा ही। गाँधी जी की शांति सेना का तो कोई राजनीतिक उद्देश्य तक नहीं था। वर्तमान शांति सेना हथियार बंद शाति सेना है। यद्यपि यह शातिपूर्ण समाधान के लिए ही कार्य करती है पर आत्मरक्षा के लिए हथियारों का प्रयोग कर सकती है। इस प्रकार के शांति सैनिकों को शाति-पर्यवेक्षक भी कहा जा सकता है। ये पर्यवेक्षक सघर्षरत दो राष्ट्रो के बीच जाकर दोनों राष्ट्रों को सघर्ष से अलग करने का प्रयास करते हैं। यह एक अतर्राष्ट्रीय निकाय है, जो सैनिक स्वरूप का है। इसके तीन महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं जिनके आधार पर यह कार्य करता है— (1) पक्षों की सहमति, (2) सैनिक स्वरूप तथा (3) निष्पक्षता। इसकी कार्य पद्धति का सार 'शाति बनाये रखना" है, "शाति होना" नहीं। शाति बनाये रखने मे नियत्रण द्वारा कार्य किया जाता है जबकि 'शाति होना" मे पूर्ण सघर्ष शमन की प्रक्रिया होती है। यह शाति सेना दबाव या नियत्रण से शाति स्थापित करती है। पूर्ण सघर्ष शमन इसके द्वारा सभव नहीं है। इसलिए इसका उद्देश्य प्राय हिंसा को रोकना ही रहता है, और सैनिक मामलो से जुडे हुए व्यक्ति ही इसमे कार्य करते हैं। तथा यह प्राय सयुक्त राष्ट्र के नियत्रण में ही सचालित होती है जिसमे विभिन्न राष्ट्रो के सैनिक एक साथ मिलकर कार्य करते हैं। कोई भी राष्ट्र सामान्य परिस्थितियों मे शाति सेना को नहीं बुलाता। बाध्यता के समय ही इस शाति सेना को बुलाना पडता है क्योंकि वह सदैव सघर्षरत नहीं रह सकता। मेहमान राष्ट्र इसमे हिस्सा न तो मेजबान राष्ट्र की स्वतत्रता के लिए लेते हैं, न ही सयुक्त राष्ट्र के दबाव से बल्कि वे राजनैतिक स्तर पर स्वय को प्रतिष्ठित करना चाहते हैं अथवा सयुक्त राष्ट्र में अपनी भागीदारी को प्रभावी बनाना चाहते हैं। सयुक्त राष्ट्र का तो यह दायित्व ही है कि वह सघर्षरत राष्ट्रो को सघर्ष करने से रोके, विश्व शाति के लिए प्रयत्न करे। सुरक्षा परिषद के अनुच्छेद 43 व 45 में कहा गया है कि सुरक्षा परिषद किसी भी राष्ट्र की न्यायोचित मांग पर सशस्त्र सेनाए तथा अन्य सुविधाए उपलब्ध करवायेंगे।

इसके ऐतिहासिक कार्यों में—कांगों सकट के समय बेल्जियम की सेनाओं

के लौट जाने के बाद भी सयुक्त राष्ट्र शाति सेना रही थी कि कहीं कागों का गृहयुद्ध विश्वशांति के लिए खतरा न बन जाए। स्वेज नहर विवाद के समय भी यह शाति सेना वहा अवस्थित रही थी ताकि ब्रिटेन, फ्रांस, इजराइल की सेनाओं का पुन सामना न हो। वर्तमान में युगोस्लाविया मे यह शाति सेना कार्यरत है। इस शाति सेना के लिए शाति कायम रखने की सभावित स्थितिया तभी बन सकती हैं जब समस्या किसी महाशक्ति से जुडी न हो, तथा विश्व युद्ध का खतरा बन जाए।

अत स्पष्ट रूप से यह कहा जा सकता है कि शाति सेना जो अपने प्रारम्भिक काल मे अहिंसा तथा सघर्ष शमन का पूर्ण व्रत लेकर चली थी आज यह व्रत खडित हो गया है। शाति सेना नामकरण वही है पर कार्यों मे बदलाव आ गया है। अपेक्षा है शाति सेना अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा पुन प्राप्त करे।

आर्थिक समस्याओं का समाधान : विसर्जन

आज का युग अर्थप्रधान युग है। अर्थ के बिना न जीवन चलता है, न समाज बनता है और न समाज चलता है। दुनिया मे जो कुछ घटित हो रहा है और जो कुछ चल रहा है, वह अर्थ के सहारे चल रहा है। "अर्थस्य पुरुषौ दास" यह उक्ति पूर्णतया चरितार्थ हो रही है।

हर प्राणी मे कुछ मौलिक मनोवृत्तिया होती हैं। मनुष्य की मौलिक मनोवृत्तियों मे से एक है— सग्रह की वृत्ति। अर्थात् जो कुछ उसे प्राप्त है, उसका वह सग्रह करना चाहता है। यह सग्रह आवश्यकता पूर्ति के लिए ही होता तो शायद विसर्जन के विचार की अपेक्षा ही नहीं होती मनुष्य में सग्रह की मनोवृत्ति इसलिए बनी क्योकि उसे आश्वासन नहीं है अर्थात् उसे भविष्य की चिन्ता है। यदि उसे भविष्य का आश्वासन मिल जाए तो सभव है सग्रह का आधार टूट जाए। किन्तु ऐसी कोई सुदृढ सामाजिक व्यवस्था नहीं है, जो व्यक्ति को भविष्य का आधार दे सके। वर्ग विभेद, असमानता और विषमता दूर करने के लिए तथा भविष्य की सुरक्षा की दृष्टि से साम्यवाद सामने आया। साम्यवादियो ने कहा— व्यक्तिगत स्वामित्व को समाप्त कर देना चाहिए। अर्थ किसी व्यक्ति का न होकर राष्ट्र का रहे। व्यक्तिगत स्वामित्व की समाप्ति ही हजारो वर्षों से चली आ रही समस्या का एकमात्र समाधान हो सकता है। पर इससे व्यक्ति की मनोवृत्ति को नहीं बदला जा सकता। निजी स्वामित्व की प्रेरणा न होने से उत्पादन घट गया। आज सोवियत रूस की स्थिति किसी से छिपी नहीं है।

धर्म के क्षेत्र से एक दूसरा विचार आया—अपरिग्रह का, असंग्रह का, जिसका सबध भगवान महावीर से है। उन्होने यह सूत्र इस आधार पर नहीं दिया कि समाज की व्यवस्था, जो कि विषमतापूर्ण है, वह समाप्त हो जाए। उन्होने इसका आधार यह बतलाया कि अर्थ का संग्रह करने वाला व्यक्ति अधिक स्वार्थी और क्रूर बन जाता है। और यह सच भी है कि मैत्री, अहिंसा, दया और करुणा का प्रवाह जिस व्यक्ति में होता है, वह बहुत बडा सग्रह नहीं कर सकता। दूसरो का दमन और शोषण नहीं कर सकता, अत अहिंसक व्यक्ति बहुत बडा परिग्रही नहीं बन सकता।

अहिसा और असग्रह दोनो साथ–साथ चलते हैं। जबकि हिंसा का सबंध सग्रह से है। इसलिए विसर्जन का सबंध जितना सग्रही व्यक्ति से है

उतना अपरिग्रही व्यक्ति से नहीं।

विसर्जन : अर्थ और दृष्टिकोण

1. अर्जन के गलत तरीकों को छोड़ना

विसर्जन का अर्थ केवल छोड़ना नहीं है, सपत्ति का त्याग करना नहीं है बल्कि उससे भी अधिक सूक्ष्म है। किसी व्यक्ति ने यदि अर्जन के गलत तरीकों को छोड दिया तो क्या उस व्यक्ति ने विसर्जन नहीं किया है? उस व्यक्ति ने निश्चित ही बहुत बड़ा विसर्जन किया है। भगवान महावीर ने कभी नहीं कहा कि अर्जन मत करो, व्यापार मत करो। क्योंकि यह अव्यवहारिक है। जहा समाज है वहां अर्जन करना ही पडेगा। पर भगवान महावीर ने कहा—अर्जन मे जो दोष है उनको छोड दो। उन्होंने कहा—किसी की आजीविका का विच्छेद मत करो, दूसरों के अधिकारो का हनन मत करो, धोखा मत दो। अर्थात् जितने व्यवसायिक दोष थे, उनका निषेध किया किन्तु व्यापार का निषेध नहीं किया। इसलिए इस अर्जन के साथ विसर्जन का प्रयोग सन्निहित था।

2. संग्रह के साथ विसर्जन

सग्रह के साथ विसर्जन का तात्पर्य है—अपने व्यक्तिगत स्वामित्व को सीमित करना। जिस व्यक्ति ने वर्ष भर मे एक लाख अर्जित किया और उसने पचास हजार का त्याग कर दिया, विसर्जन कर दिया अर्थात् अपने स्वामित्व को सीमित कर लिया। या किसी व्यक्ति के पास पहले से बहुत सपत्ति है और वह यह सोचकर अपनी सपत्ति का विसर्जन कर देता है कि मुझे इसका संग्रह नहीं करना चाहिए। यह भी व्यक्तिगत स्वामित्व को सीमित करना है।

3. व्यक्तिगत उपभोग का सीमाकन

व्यक्तिगत उपभोग का सीमाकन करना भी विसर्जन है। कोई व्यक्ति अपनी सपत्ति को छोड़ नहीं रहा है, लेकिन वह उस सपत्ति के उपभोग का सीमाकन कर लेता है कि इतनी सपत्ति से अधिक का उपयोग मैं नहीं करूंगा। उसने दिया कुछ नहीं, पर व्यक्तिगत भोग की सीमा निर्धारित कर दी। यह भी एक प्रकार विसर्जन है क्योकि धन के प्रति हमारा जो दृष्टिकोण है, वही समस्या है। यही दृष्टिकोण शोषण करता है, अपराध करता है, गलत साधनो से अर्जन करता है। यदि वस्तु के पीछे केवल जीवन यापन का दृष्टिकोण जुड जाए तो वह वास्तव मे असग्रह है, अपरिग्रह है। शुद्ध अर्थ मे जिस व्यक्ति ने अर्थ से अपने ममत्व को हटा लिया, उसे मात्र वस्तु माना जीवन यापन का साधन माना, उसके लिए वह मात्र वस्तु ही रह गई, अर्थ नहीं रहा, धन नहीं रहा। वस्तु अचेतन है, पुद्गल है। इसके सग्रह को परिग्रह नहीं कहा जा सकता। वस्तु परिग्रह तब बनती है जब हमारे हृदय मे उस

वस्तु के प्रति आसक्ति जन्म ले लेती है। यह आसक्ति परिग्रह है और यही आसक्ति क्रूरता को जन्म देती है।

दान और विसर्जन

दान वास्तव में उस समाज की व्यवस्था का अंग है जो बहुत त्रुटिपूर्ण समाज–रचना को लेकर चलता है। दान में हमेशा देने वाला और लेने वाला दो पक्ष रहते हैं। जिसमें एक पक्ष के अह का पोषण होता है और दूसरे पक्ष में हीन–भावना का पोषण। जहां समानता के अधिकार, समाज व्यवस्था के अधिकार की बात है, जहा कर्त्तव्य की बात है, वहां दान के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता। अपने ही भाईयों को हीन भावना मे रखकर उनकी हीनता को पोषण देना, क्या सभ्य समाज में मान्य हो सकता है?

विसर्जन दान नहीं है। विसर्जन है—अपने सग्रह, अपने अर्जन और अपने व्यय की स्वस्थ पद्धतियो का स्वीकरण। अर्जन में दोषपूर्ण पद्धतियों को छोडना, सग्रह को छोडना, और वर्तमान की परिस्थितियों के सन्दर्भ में स्वय को अधिक सामाजिक रूप मे ढालना—यही है विसर्जन। विसर्जन त्याग है, ममत्व व आसक्ति को छोडना है, सग्रह को छोडना है और अपनी वृत्तियों को सामयिक बनाना है।

क्या विसर्जन के साथ अर्जन उचित है?

विसर्जन के साथ अर्जन के औचित्य को भगवान महावीर के इस चिन्तन मे देख सकते है—भगवान महावीर ने असग्रह पर बहुत बल दिया किन्तु उन्होंने यह कभी नहीं कहा कि इतने धन से अधिक मत रखो। उन्होने कहा— तुम्हारे अर्जन के साधन शुद्ध होने चाहिए तथा व्यक्तिगत जीवन में सयम होना चाहिए। अगर ये दो बाते व्यक्ति के जीवन मे हैं तो फिर कितना धन आता है, कितना नहीं आता है, इसकी चिन्ता करने की जरूरत नहीं है।

सग्रह शब्द सापेक्ष है। सग्रह का जो मूल दोष है, वह है—उत्पादन के गलत तरीके और व्यक्तिगत जीवन मे असयम, लालसा, विलासिता और उच्छृखलता। अगर ये दोष मिट जाये तो एक करोडपति को भी संग्रही नहीं कहा जा सकता। भगवान महावीर ने एक चक्रवर्ती सम्राट और एक कोशीय प्राणी के सग्रह को समान बतलाया है। उन्होने कहा है— परिग्रह की भावना का दोनो ने विसर्जन नहीं किया है, इसलिए दोनो परिग्रही हैं। इसलिए परिग्रह का मूल है—हमारी ममत्व भावना, न कि वस्तु का सग्रह। इसलिए विसर्जन के साथ अर्जन किया जा सकता है बशर्ते उसके प्रति ममत्व न हो तथा अर्जन के साधन शुद्ध हों।

विसर्जन और वितरण

धन को, सग्रह को छोडने की प्रेरणा जागती है और जब धन छोडा जाता

है तब उसे विसर्जन कहा जाता है। विसर्जन के बाद वितरण हो भी सकता है और नहीं भी। बुद्ध ने राज्य का विसर्जन किया, पर बाद की व्यवस्था नहीं की। कई सपत्ति छोडते हैं और उसकी व्यवस्था भी कर देते हैं। विसर्जन के बाद इसलिए वितरण आवश्यक है कि उस सपत्ति का प्रयोग पवित्र उद्देश्य के लिए हो। जो वितरण की बात नहीं मानते, उनका तर्क यह है कि विसर्जन कर सपत्ति का ममत्व ही जब छोड दिया है तो फिर उसके सही और गलत उपयोग की चर्चा कैसी? पर विसर्जन के बाद उचित वितरण आज के समाज की दृष्टि से ज्यादा व्यवहारिक है।

अतः स्पष्टतया यह कहा जा सकता है कि वर्तमान मे जो विषमता की समस्या है, उस समस्या के समाधान का आध्यात्मिक सूत्र है—विसर्जन। विसर्जन हमे यह बतलाता है कि सब लोग इस बात को समझे कि अधिक सग्रह करना किसी के हित में नहीं है, किसी के पक्ष मे नहीं है। जो आर्थिक समस्याए आज हिंसा पैदा कर रही हैं, उनका समाधान विसर्जन मे खोजा जा सकता है। विसर्जन का पूरा विकसित रूप तो उस दिन सामने आएगा, जिस दिन एक व्यक्ति इतना अर्जन ही नहीं करेगा कि वह देने की स्थिति मे हो।

विसर्जन का पहला चरण होगा ममत्व का विसर्जन और दूसरा चरण होगा व्यवस्था सुधार। यदि ममत्व विसर्जन हो जाए तो व्यवस्था सुधार मे कोई कठिनाई नहीं होगी। विसर्जन के सूत्र ने वर्तमान व्यवस्था मे धर्म व अध्यात्म के द्वारा, असग्रह के द्वारा क्या किया जा सकता है, इस ओर इगित किया है। यदि विश्व विसर्जन की बात ठीक तरह से समझ ले तो हिंसक क्राति के द्वारा जो परिवर्तन हम लाना चाहते हैं, वह सहज मृदुतापूर्ण एव अहिंसक ढग से किया जा सकता है। क्योंकि आज सग्रह विश्वव्यापी बन चुका है और इसी सग्रह की वृत्ति ने कुविकास तथा असतुलित विकास जैसे विचारों तथा व्यवस्थाओ को जन्म दिया है जिनका परिणाम भी आज पूरा विश्व भोग रहा है। एक तरफ समृद्धि है लेकिन अशाति है, दूसरी तरफ भुखमरी, गरीबी, कुपोषण है, अशाति वहा भी है। पर समृद्ध राष्ट्रो ने यह समझ लिया है जब तक इस विषमता को मिटाया नहीं जाएगा, तब तक शाति उन्हे भी नहीं मिल पाएगी।

विसर्जन इस सारे सकट का एक आदर्श समाधान है। एक व्यक्ति, एक राष्ट्र अपनी आवश्यकता से अधिक सपत्ति का विसर्जन करे, भोग का सीमाकन करे तथा इस विसर्जन का वितरण अविकसित राष्ट्रो व गरीब व्यक्तियो मे किया जाए तो निश्चित ही कुविकास की जगह संतुलित विकास सभव हो सकता है। शाति स्थापना को बल मिल सकता है।

पर्यावरण
एवं
निशस्त्रीकरण

पर्यावरण : एक आध्यात्मिक दृष्टिकोण
(वैदिक, बौद्ध और जैन दृष्टि)

पर्यावरण—

हम उस पर्यावरण में रहते हैं जो हमारे लिए अनुकूल है। हम एक विशेष पर्यावरण में ही रह सकते हैं। पाषाण युग के लोग अपने पर्यावरण में रहते थे। शारीरिक दृष्टि से कोई विशेष अन्तर न होने पर भी हम उस पर्यावरण मे रहने की नहीं सोच सकते। हम केवल पृथ्वी ग्रह पर रह सकते हैं। पर मगल, गुरू आदि दूसरे ग्रहो मे नहीं रह सकते। इन दोनो स्थितियो में अस्तित्व और अन-अस्तित्व की स्थितिया भिन्न-भिन्न हैं। यद्यपि वे दोनो स्थितियां समान नहीं हो सकतीं पर वे पर्यावरण का हिस्सा हैं।

हमारी प्रथम प्राथमिकता हमारा अस्तित्व है। यदि हमारा अस्तित्व ही नहीं है तो सारी चीजे स्वत ही समाप्त हो जाती हैं। हमे हमारे अस्तित्व के लिए श्वास लेने के लिए ऑक्सीजनयुक्त हवा चाहिए, पीने के लिए पानी चाहिए और खाने के लिए भोजन चाहिए। इसलिए हमें एक ऐसा पर्यावरण चाहिए जो हमे ऑक्सीजन युक्त हवा, पानी व ऐसा भोजन दे जिसका पाचन हम आसानी से कर सके। हमारा अस्तित्व खतरे मे पड सकता है यदि ये चीजे न हों या प्रदूषित हो। इस बाह्य वातावरण का सरक्षण कई घटको पर निर्भर करता है। उनमे से एक घटक है—आध्यात्मिक— जो हमें सही ढग से मार्गदर्शित करता है तथा ऐसी आदते विकसत करने मे सहयोग करता है जिससे पर्यावरण का सरक्षण हो सके।

सभ्यता के विकास के साथ-साथ हमारे रहने के तरीकों मे पर्यावरणीय परिवर्तन हुआ है, हमारी इच्छाए बढी हैं तथा हमारी आदते बदली हैं। प्रत्येक क्षण, प्रत्येक दिन – हम धीरे-धीरे बदलते रहते हैं, यद्यपि हम उसका अनुभव नहीं करते। यह परिलर्वन विकास का एक अग है जो प्राकृतिक कानून द्वारा सचालित है। समग्र रूप से वह प्रत्येक वस्तु जिसे हम चाहते हैं, पर्यावरण का एक हिस्सा है। यदि हमारी आदतें खराब हैं तो वह पर्यावरण का सामाजिक प्रदूषण है जबकि हमारी अच्छी आदते पर्यावरण की शुद्धि करती हैं। हमारी आदतों को अधिकांशत अध्यात्मवाद नियत्रित करता है भले ही वह भय के

कारण हो या आस्था के कारण या हमारे भले-बुरे के ज्ञान के कारण। समाज विज्ञान का यह पहलू स्वस्थ समाज के निर्माण में सहयोगी है। यदि ऐसे स्वस्थ समाज का निर्माण होता है तो यह स्वस्थ जीवन के लिए ऐसा पर्यावरण देगा जो शारीरिक व सामाजिक आवश्यकताओ के अनुरूप होगा।

वैज्ञानिक दृष्टि के अनुसार अध्यात्मवाद समाज विज्ञान का एक अग है, जिसमे सामाजिक न्याय आदि भी सम्मिलित हैं। हमारी शिक्षा प्रणाली जो सास्कृतिक पर्यावरण को जन्म देती है, वह भी अध्यात्मिक व धार्मिक सस्थाओ का एक अग है। आर्थिक स्थितियां जो विभिन्न क्रान्तियो के द्वारा सामाजिक पर्यावरण का निर्माण करती हैं वे भी अध्यात्मवाद के अग हैं। इसलिए अध्यात्मवाद के भी अनेक पहलू हैं जो पर्यावरण को बना भी सकते हैं और नष्ट भी कर सकते हैं। अत पर्यावरण के लिए आध्यात्मिक दृष्टि का अध्ययन महत्वपूर्ण हो जाता है।

1. पर्यावरण-वैदिक आयाम

प्राचीनतम साहित्य मे वेदो का स्थान सर्वोपरि है। वेद प्रकृति की पूजा से प्रारम्भ होते हैं। वेदो मे अनेक विचार परस्पर विरोधी पाये जाते हैं क्योकि वेद किसी एक व्यक्ति का लेखन नहीं अपितु अनेक ऋषियों का समन्वित लेखन है। हम वेदो मे वर्ग-विहीन समाज रचना का सिद्धान्त पाते है। तो साथ ही जाति व्यवस्था को भी। लेकिन सामाजिक क्रम और पर्यावरण का मुख्य सिद्धान्त प्रकृति मे एक जैसा है। प्रकृति से ही वेदो का प्रारम्भ है।

आवश्यकतानुसार देवताओं की स्वीकृति–

जब पूजा का सिद्धान्त प्रारम्भ हुआ तब सूर्य एक मात्र देवता था। सामाजिक आवश्यकताए बदलती हैं तो समाज मे भी परिवर्तन होते हैं। इसी आधार पर देवता के रूप में पृथ्वी, वातावरण और अतरिक्ष के देवता का विचार आया। सूर्य अतरिक्ष का प्रमुख देवता है जबकि वातावरण का इन्द्र तथा पृथ्वी का अग्नि। यदि हम थोडा और ध्यान दे तो हम पायेंगे कि ये देवता हमारी आवश्यकताओ के अनुसार माने गये। हम सूर्य के बिना नहीं रह सकते और प्राचीन समय में तो सौर ऊर्जा ही एक मात्र शक्ति का स्रोत था। इसलिए सूर्य प्रमुख देवता बना। जब सभ्यता का विकास हुआ तो हमे कृषि की जरूरत हुई और कृषि के लिए वर्षा ही एक मात्र स्रोत था, इस हेतु इन्द्र देवता की प्रतिस्थापना हुई। जब हमने पकाना सीखा तो हमे अग्नि की अपेक्षा हुई, इसलिए अग्नि को देवता के रूप मे देखा गया। समय बीतने के साथ हमारी आवश्यकताए भी बढती गईं और हम अपनी आवश्यकता के अनुरूप उनके प्रतिनिधित्व के रूप मे देवताओं को भी स्वीकार करते गये। अतिम रूप मे ब्रह्मा, विष्णु और महेश की स्वीकृति हुई जो क्रमश सृष्टि या निर्माण कार्य,

प्रशासनिक कार्य एवं संहार कार्यों में प्रतीक हैं। वैदिक साहित्य में वह विकास हमारी प्राकृतिक आवश्यकताओं के अनुरूप वर्णित है।

सम्पूर्ण वैदिक ज्ञान का व्यवहारिक पक्ष अथर्ववेद में है। यह सत्य है कि मोक्ष अंतिम उद्देश्य है जिसकी प्राप्ति के लिए धर्म, अर्थ और काम है। इन तीनो के सामाजिक क्रम के अनुरूप सचालन के लिए आत्म संयम और कई अन्य सावधानियां वर्णित की गई हैं। इसके साथ ही अथर्ववेद हमारी दैनिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए भी मार्ग निर्देशित करता है। यह कृषि, सिचाई, भोजन बनाने, आत्म-सयम, शहरी और ग्रामीण विकास, परिवार व्यवस्था, सामान्य प्रशासन, राजनीति, युद्ध, पशु विज्ञान, आयुर्विज्ञान आदि से संबंधित वैज्ञानिक जानकारी देता है। इसके अतिरिक्त यह हमे मैस्मेरिज्म, सम्मोहन, आत्म-सम्मोहन, मानसिक, स्वास्थ्य आदि से सबधित भी पूर्ण जानकारी देता है।

यह भी विश्वास किया जाता है कि सभी भौतिक प्राणी और पदार्थ पचभूतो से बने हैं। इन मूलभूत पचभूतों का कुल योग कभी भी परिवर्तित नहीं होता है केवल इनके अशो मे परिवर्तन होता रहता है। इसलिए यह कहा गया है कि कोई भी पदार्थ पूर्णत नष्ट और निर्मित नहीं होता, केवल परिवर्तित होता रहता है। इसलिए विश्व का पदार्थ सत्,रज् या तम अर्थात् सतुलित, गतिज और स्थैतिक इन तीनो मे से किसी एक अवस्था मे रहता है जो आधुनिक विज्ञान के अनुरूप भी है।

अत वेदो के अनुसार पर्यावरण की व्यवस्था मूलत भौतिक व्यवस्था है जिसे प्रकृति पूजा के रूप मे आध्यात्मिक रूप दिया गया है। यह व्यवस्था माग व आवश्यकता के अनुरूप बदलती रहती है। जैसी स्थितिया होती हैं, हम पदार्थो का परिवर्तन तदनुरूप ही कर लेते है।

पर्यावरण पर गीता का दृष्टिकोण—

वैदिक साहित्य मे गीता का स्थान भी महत्वपूर्ण है, जो निष्काम कर्म, करने की शिक्षा देती है। मनुष्य सोचता है कि वह कार्य कर रहा है, जो कि भ्रान्त धारणा है। वास्तव मे तो वह एक माध्यम है और कार्य पुरुष के माध्यम से प्रकृति के द्वारा किया जाता है। सामान्य परिस्थितियों में एक सामान्य व्यक्ति प्रकृति के नियंत्रण के बाहर नहीं जा सकता, ऐसा वह मोक्ष प्राप्त करके ही कर सकता है। अत किसी चीज की प्राप्ति के लिए उसे अपने आप को प्रकृति के सुपुर्द कर देना चाहिए।

अत जब मनुष्य प्रकृति का एक अग है तो प्रकृति को नष्ट करना उसे नष्ट करना है। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से जो प्रकृति है वह हमारे दृष्टिकोण से पर्यावरण है। इसलिए पर्यावरण को दूषित करना मनुष्य स्वय को नष्ट

करने के समान है। यहां पर्यावरण का तात्पर्य केवल भौतिक या बाह्य पर्यावरण से ही नहीं है बल्कि सामाजिक पर्यावरण से भी है। पर्यावरण शुद्धि केवल परिस्थिति के संतुलन पर ही निर्भर नहीं है बल्कि सामाजिक गलत कार्यों को भी बन्द करना चाहिए। जब-जब समाज में ऐसे अधर्म या गलत कार्य बढ़ते हैं तब प्राकृतिक विकास के रूप मे महा-मानव जन्म लेते हैं ताकि पर्यावरण को शुद्ध कर सके। यहा तक कि सामाजिक पर्यावरण-तंत्र की शुद्धि के लिए युद्ध भी प्राकृतिक विकास का एक अग है। इसी तरह से बाह्य पर्यावरण जिसमें पेड़ पौधे, पशु आदि जो प्रकृति का हिस्सा है, उसका भी सरंक्षण होना चाहिए।

अत. गीता ने प्रातिक कानून को स्पष्ट रूप से वर्णित किया है जो वैज्ञानिक भी है।

पर्यावरण-बौद्ध दृष्टि–

बौद्ध दर्शन के त्रिपिटको–विनय पिटक, तुतपिटक व अभिधम्मपिटक मे से अभिधम्मपिटक मे जीवन के विभिन्न पहलुओ, पदार्थों और पर्यावरण पर चर्चा उपलब्ध है। अभिधम्मपिटक मे धातु कथा खण्ड मे पदार्थों का वैज्ञानिक विश्लेषण उपलब्ध है।

बौद्ध दर्शन का ध्येय सामाजिक पर्यावरण का सरक्षण है। इस हेतु वह अहिंसा–करुणा पर बल देता है। यहा अहिंसा का यह अर्थ नहीं है कि हमे एक पेड को नहीं काटना चाहिए या एक पशु का वध नहीं करना चाहिए बल्कि हमें ऐसा तभी करना चाहिए जब ऐसा करना निरपेक्ष दृष्टि से आवश्यक हो गया हो। लोभ के लिए शोषण कभी भी स्वीकार्य नहीं हो सकता क्योंकि लोभ या तृष्णा ही एक मात्र हिंसा का कारण है। इसी तरह वह समाज जो आत्मनिर्भर है समाज के प्रत्येक व्यक्ति को आत्म निर्भर बनाने का प्रयत्न करे। ऐसी स्थिति में पर्यावरण सरक्षण स्वत ही रहेगा और ऐसा होने पर आधुनिक विकास सामाजिक आवश्यकता के अनुरूप होता रहेगा।

बौद्ध दर्शन मे शरीर, वचन और मन–ये तीन प्रकार की प्रवृत्तियॉ मानी गई हैं। इन सब मे मानसिक प्रवृत्ति सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। क्योकि कर्म का अर्थ ही किया गया है–इच्छाशक्ति। इस दृष्टि से कोई भी ऐसी इच्छा जो स्वय की हानि करे, दूसरो की हानि करे या दोनो की हानि करे–अकुशल है। सामाजिक पर्यावरण की दृष्टि से यह सूत्र महत्त्वपूर्ण है कि हम केवल दूसरो को ही कष्ट न दे पर स्वय को भी किसी प्रकार की हानि न पहुचाये। इस दृष्टि से व्यक्तिगत गलत कार्य जैसे लोभ, सग्रह आदि सामाजिक पर्यावरण के लिए घातक हैं क्योकि ये अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिक ढाचे को तोड़ते हैं।

बौद्ध दर्शन मानवीय दुखो से छुटकारा पाने का मार्ग बताता है। किसी भी धर्म में यह होना ही चाहिए कि किसी भी प्राणी के दुःख और दुर्भाग्य के क्षणों में हम उसके प्रति करुणा रखें। यदि ऐसी प्रवृत्ति विकसित होती है तो हम दूसरों के प्रति एव प्रकृति के प्रति क्रूर नहीं बन सकते। दूसरों को कष्ट में पड़ा हुआ नहीं देख सकते। बौद्ध दर्शन की यह स्पष्ट दृष्टि है कि हर प्राणी जो दूसरो से विशिष्ट है वह अपने से निम्न प्राणियो के प्रति सहयोग करे, करुणा रखे। इसमें पशु, पक्षियों, पेड़-पौधों आदि के प्रति भी करुणा की दृष्टि समाविष्ट है। यह करुणा भले ही अशोक की तरह सामाजिक हो या बुद्ध की तरह आध्यात्मिक हो। करुणा के ये दोनो ही रूप समस्त प्राणियो के प्रति करुणा की बात करते हैं। इससे न केवल पर्यावरण संरक्षण होता है बल्कि सभी प्राणियो के प्रति समता का व्यवहार भी फलित होता है।

बौद्ध दर्शन की मान्यता है कि व्यक्ति में क्रूरता तृष्णा के कारण आती है। वैसे भी सामाजिक आर्थिक हिंसा मे तृष्णा ही महत्वपूर्ण कारण बनती है। बौद्ध दृष्टि का कहना है जब तक मनुष्य इस तृष्णा पर काबू नहीं पा लेता तब तक वह न तो पर्यावरण सरक्षण के प्रति जागरुक हो सकता है और न परम शाति तक ही पहुच सकता है। तृष्णा उसे सामाजिक व आर्थिक अपराध करने के लिए प्रेरित करती है वहीं वह प्रकृति का अधाधुध दोहन कर प्रकृति के पर्यावरण को भी असतुलित करते हैं। इसलिए बुद्ध सर्वप्रथम तृष्णा को वश मे करने की बात करते हैं ताकि सामाजिक व प्राकृतिक पर्यावरण का सरक्षण हो सके।

पर्यावरण-जैन दृष्टि

सम्पूर्ण प्रकृति लयबद्ध तरीके से चल रही है। कुछ लोग इस गतिमयता के पीछे ईश्वर का हाथ मानते हैं पर जैन दर्शन ईश्वर कर्तृत्व में विश्वास नहीं करता। जैन दर्शन के अनुसार संसार में सब कुछ अपने प्राकृतिक नियमो के अनुसार ही हो रहा है। मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जो इस प्राकृतिक व्यवस्था को लाघकर अपने असयम से या वैज्ञानिक प्रगति के नाम पर कुछ ऐसा प्रयत्न कर रहा है जिससे इस सहज सतुलन के बिगड़ने का खतरा पैदा हो रहा है हो सकता है मनुष्य का यह अतिक्रमण किसी भावी प्राकृतिक समीकरण–सरचना की ही एक कडी हो, पर क्या ऐसा भी सभव नहीं है कि मनुष्य किसी सभाव्य को असमय मे ही घटित होने के लिए आमत्रित कर रहा हो।

जैन–धर्म जीवन का अस्तित्व केवल मनुष्यो, पशुओं या कीड़े–मकोड़ों मे ही नहीं मानता, अपितु पृथ्वी, पानी, अग्नि, हवा तथा वनस्पति इन पचभूतों

मैं भी उसका अस्तित्व स्वीकार करता है। वास्तव में जीवन की यह सूक्ष्म दृष्टि जैन दर्शन की अपनी एक विशिष्ट स्वीकृति है। इसलिए सूक्ष्म जीव की हिंसा से बचने के लिए जैन धर्म ने जितना विचार किया है उतना अन्य किसी धर्म ने नहीं किया। प्रो० सी०एन० वकील ने अपनी पुस्तक— "इकोनॉमिक्स ऑफ काउप्रोटेक्शन" में कहा है—हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि मिट्टी वनस्पति, पशु और मानव का परस्पर गहरा संबंध है। जिस प्रकार मानव में जीवन है, पशु और वृक्ष आदि सजीव हैं, उसी प्रकार मिट्टी भी सजीव है। कोट्याकोटी अतिसूक्ष्म ऑर्गनिज्म मिट्टी मे सदा क्रियारत रहते हैं। स्पष्ट है कि आज विज्ञान भी पृथ्वी आदि भूतो के बारे मे जिस दृष्टि से विचार करने लगा है, उससे जैन की अहिंसा मान्यता को एक नया आयाम मिला है। यद्यपि जैन दर्शन जहा प्राणी विनाश की दृष्टि से अहिंसा पर विचार करता है वहा विज्ञान उस पर प्रदूषण की दृष्टि से विचार करता है।

भूमि प्रदूषण और पृथ्वीकायिक हिंसा

अमेरिकन राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी के अनुसार वायु, पानी, मिट्टी पौधे, पेड और जानवर सभी मिलकर पर्यावरण और वातावरण की रचना करते हैं। वे सभी घटक पारस्परिक सतुलन बनाये रखने के लिए एक-दूसरे को प्रभावित करते है। किसी एक के असन्तुलन से समूचा पर्यावरण प्रभावित होता है। भगवान महावीर ने कहा—विवेकी व्यक्ति हिसा के परिणाम को जानकर स्वय पृथ्वी शस्त्र का समारम्भ न करे, दूसरो से उसका समारभ न करवाये तथा समारभ करने वालों का अनुमोदन भी न करे। नाना प्रकार के शस्त्रो से पृथ्वी सबधी क्रिया मे व्याप्त होकर पृथ्वीकायिक जीवो की हिंसा करने वाला व्यक्ति केवल उन्हीं की हत्या नहीं करता अपितु नाना प्रकार से अन्य जीवों की भी हिंसा करता है।

उपरोक्त उद्धरणो मे भगवान महावीर ने पृथ्वीकाय की हिंसा का निषेध किया है। आज अनेक प्रकार के खनिज पदार्थों के लिए खासकर कोयले के लिए पृथ्वी का जबरदस्त दोहन किया जा रहा है। वैज्ञानिको ने आशका व्यक्त की है कि यदि इसी प्रकार पृथ्वी का दोहन होता रहा तो ये भण्डार कुछ ही समय मे समाप्त हो जायेगे। यदि यह दोहन बद किया जाए तो खनिज तो बचेगे ही पर प्रदूषण पर भी काबू पाया जा सकेगा। इस प्रकार पृथ्वीकाय की हिंसा केवल पृथ्वीकाय की हिंसा नहीं है अपितु वातावरण का संतुलन भी गहरे अर्थ में प्रभावित होगा।

जल-प्रदूषण और अपकायिक हिंसा

पानी हमारे जीवन का एक मुख्य स्रोत है। पानी मे पैदा होने वाली सूक्ष्म वनस्पति फायटोप्लैक्शन पृथ्वी पर 50 से 70 प्रतिशत तक प्राणवायु का

उत्पादन करती है। जल-प्रदूषण से अपकाय की हिंसा तो होती ही है पर वनस्पति, मछलियाँ यहां तक कि उसका प्रदूषण मनुष्य तक को प्रभावित करता है। भगवान महावीर ने कहा—जल की यह हिंसा मनुष्य के अहित तथा अबोधि का कारण है। जल की हिंसा का तात्पर्य जल—प्रदूषण से है।

वायु-प्रदूषण और अग्निकायिक हिंसा

वायु प्रदूषण आज के युग की एक ज्वलन्त समस्या है। एक अनुमान के अनुसार वायु प्रदूषण की यही गति रही तो अगले सौ वर्षों में पृथ्वी पर कार्बनडाईआक्साइड की मात्रा दुगुनी हो जाएगी। परिणाम होगा—पृथ्वी का तापमान बढ जाएगा, ध्रुवों की बर्फ पिघलने से समुद्र का जल स्तर बढ जाएगा, और विश्व के कई समुद्रतटीय महानगरो को समुद्र लील जाएगा।

जैन दर्शन के अनुसार वायु प्रदूषण अग्निकाय के जीवों के कारण है क्योकि वातावरण मे करोडो टन धुआ, रेत आदि छोडे जा रहे हैं। महावीर ने कहा—अग्नि के जीवो को पीडित करना स्वय अपने को ही उत्पीड़ित करना है। निश्चय ही अग्निकाय की इस विनाशलीला को जानने वाला सयमित जीवन जीने लगता है और जो असंयमित हैं वे जानते हुए भी इस विनाशलीला से अनजान है।

ध्वनि-प्रदूषण और वायुकायिक हिंसा

भगवान महावीर ने कहा—जो सत्य को जानता है, वही मौन को जानता है और जो मौन को जानता है, वही सत्य को जानता है। अधिकांश व्यक्ति शब्द–शक्ति को जानते नहीं। पर आज यह स्पष्ट हो गया है कि शब्द या ध्वनि मनुष्य के लिए कितनी घातक भी हो सकती है। सचमुच ध्वनि–प्रदूषण आज के युग की एक महत्त्वपूर्ण समस्या बन गयी है। प्रतिवर्ष दस–प्रतिशत की दर से बढने वाली इस ध्वनि पर यदि नियन्त्रण नहीं हुआ तो वैज्ञानिक अनुमान करते है कि अगले कुछ दशको में मानवजाति के बहरे होने का खतरा पैदा हो जाएगा।

वनों की कटाई और वनस्पतिकायिक हिंसा

वनस्पतिकाय की हिंसा अर्थात् वनों की अधाधुध कटाई से अनेकविध दुष्परिणाम तो अत्यन्त स्पष्ट हैं। एक ओर तो इससे प्राणवायु का नाश हो रहा है, दूसरी और भूक्षरण को बढावा मिल रहा है तथा भूमि बजर होती जा रही है। वर्षा के अनुपात मे भी अतर आ रहा है तथा जन—जीवो का विनाश भी तेजी से हो रहा है।

भगवान महावीर ने कहा—वनस्पतिकायिक जीवों की हिंसा केवल वनस्पतिकायिक जीवो की ही हिंसा नहीं है अपितु नाना प्रकार के अन्य जीवों की भी हिंसा है। उन्होंने कहा—वर्तमान जीवन के हिए जो व्यक्ति वनस्पति

की हिंसा करता है या दूसरे से करवाता है या करने का अनुमोदन करता है तो यह हिंसा मनुष्य जाति के अहित के लिए है। वनस्पतिकाय की हिंसा जीवन नहीं, मृत्यु है।

अतः भगवान महावीर सभी जीवों के प्रति सयम अर्थात् करुणा के प्रवर्तक थे। उनके प्रवचन का उदेश्य था—ससार के सभी तत्त्व अपनी–अपनी स्थिति में रहें। किसी का कोई नुकसान न करे। कोई किसी को बाधा न पहुंचाये। किसी का अस्तित्व बाधित न हो। ससार के सभी प्राणी जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता। जो स्वय जीने के इच्छुक हैं वे दूसरो को मारने या नष्ट करने की बात कैसे सोच सकते हैं? इसलिए यदि मनुष्य में सयम की प्रवृत्ति विकसित की जाए तो प्रदूषण रोका जा सकता है। सयम ही जीवन है, असयम मृत्यु है। यह बात यदि व्यक्ति के विचार और आचरण से जुड़ जाए तो पर्यावरण असन्तुलन की समस्या का निराकरण सभव है।

पर्यावरण पर केवल जीवनशास्त्रीय विवेचन ही पर्याप्त नहीं, उसका आध्यात्मिक विवेचन भी आवश्यक है। पर्यावरण पर आध्यात्मिक दृष्टि की स्पष्टता के बिना पर्यावरण सरक्षण सभव नहीं हो सकेगा। प्राय सभी धर्म दर्शनों ने किसी न किसी रूप मे प्रकृति सरक्षण की बात कही है, जिसे पर्यावरणीय चितन ही कहा जाएगा। पर्यावरण मे प्रकृति सरक्षण आशिक दृष्टि है, जबकि समस्त सामाजिक, आर्थिक गलत कार्यों व आदतो पर नियत्रण भी आवश्यक है, इस हेतु आध्यात्मिक दृष्टि अत्यावश्यक है। आध्यात्मिक दृष्टि यह प्रतिपादित करती है कि मनुष्य की अनन्त इच्छाए अर्थात् असयम ही पर्यावरण प्रदूषण के लिए जिम्मेदार है, इसलिए असयम पर अकुश आवश्यक है।

पृथ्वी की सुरक्षा पर मंडराते खतरे के बादल

प्रकृति से छेडछाड़, रासायनिक बहिस्राव, परमाणविक व औद्योगिक कचरा, तेजाबी वर्षा और वायुमण्डल मे सतत बढ़ रही कार्बनडाईआक्साइड के परिणाम स्वरूप मनुष्य के समक्ष अभूतपूर्व संकट उठ खडा हुआ है।

मानव सभ्यता की कहानी प्राकृतिक नियमों के उल्लघन की कहानी है। जब से मनुष्य ने सुमेरिया, मिश्र और सिंधु घाटी की महान सभ्यताओं को जन्म दिया तब से वह प्राकृतिक नियमो के विरूद्ध किसी न किसी सघर्ष मे जुटा हुआ है। औद्योगिक क्राति ने प्रकृति पर मानव की विजय को भी साबित कर दिया। फिर भी उसके विकास के चरण रुके नहीं। उसने पर्यावरण की जटिलताओ को भली प्रकार समझे बिना स्वार्थ—पूर्ति हेतु प्रकृति की व्यवस्था मे व्यापक रूप से दखल अन्दाजी शुरू कर दी। खाद्यान्नो की पूर्ति हेतु कृषि—कार्य के लिए जगल के जगल काट डाले तथा विशाल सिचाई योजनाओ की रूपरेखा तैयार की ताकि फसलों को निर्बाध रूप से जल उपलब्ध होता रहे। प्राचीनकाल के लोग इस तथ्य से अवगत थे कि आवश्यकता से अधिक फसल उगाने और चराई करने से मृदा का क्षरण होता है, पर तथाकथित सभ्य लोग इस सच्चाई को जानते हुए भी सावधान नहीं हुए। परिणाम उस मलबे के ढेर के रूप मे देख सकते हैं जो हमारी महान सभ्यताए पीछे छोड़ गई हैं। प्राचीन सुमेरिया (आधुनिक ईराक), महान बेबीलोनियाई साम्राज्य का खलिहान था, इसके परिदृश्य मे आज टीले नजर आते हैं, जो विस्मृत शहरो के प्रतीक हैं।

सिचाई व अन्य कार्यों के लिए भूमिगत जल के अधिक उपयोग का परिणाम खारापन है क्योकि भूमिगत जल का स्तर उसके अत्याधिक उपयोग के कारण नीचा हो जाता है। मेक्सिको, अमेरिका के बहुत से भाग, भारत, चीन और पश्चिमी—पूर्वी एशिया मे ऐसे बहुत से क्षेत्र हैं। इन कटु अनुभवो के बावजूद भी दुनिया भर में भूमिगत जल का अधाधुध प्रयोग जारी है।

औद्योगीकरण के पश्चात् प्राकृतिक ससाधनो का दोहन भी चरम सीमा पर पहुंच गया है। यही कारण है कि कोयला और तेल दोनों की समाप्ति के कगार पर हैं। आधुनिक विश्व शक्ति के वैकल्पिक स्रोतों के बारे में तेजी से सोच रहा है। हमारे वर्तमान खनिज तथा ईंधन के भण्डारों को जमा करने में प्रकृति के लाखो वर्ष लगे हैं पर इन्हें समाप्त करने में चन्द शताब्दिया ही लगेंगी। लुटेरे और परभक्षी के रूप मे हम अन्य सभी प्राणियों से आगे हैं। आने वाली कई पीढियो के खनिजों का दोहन हमने कर लिया है। हम स्वय को निर्माता और चितक मानते हैं। हमारे द्वारा किया गया निर्माण, हमारी अंधाधुध नष्ट करने की क्षमता की तुलना मे बहुत ही नगण्य है। चतुर मनुष्य अपने ही घर को, अपने ही वशजों को बर्बाद करने मे लगा है। कोई पक्षी भी अपने नीड को यों बरबाद नहीं करता। इथियोपिया इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। सत्तर के दशक मे वह अकाल और भुखमरी की गिरफ्त मे आ गया। कारणो का अध्ययन करने पर पता चला कि भूख या दरिद्रता के पीछे मूल कारण अकाल नहीं, पर्वतीय क्षेत्रो मे जमीन का बेतहाशा उपयोग था, जिसके फलस्वरूप मिट्टी बुरी तरह से कटने लगी थी।

औद्योगीकरण का एक और दुष्परिणाम पूरी मानवता के समक्ष अवाछित कचरे के रूप मे है। इस अवाछित कचरे के ढेर बढते जा रहे हैं, इनसे वायु-प्रदूषण बढ रहा है तथा वनस्पतियो को नुकसान पहुच रहा है। ऐसे वातावरण मे पौधो के उत्पादो की पोषकता मे कमी हुई है, जिससे इन पर निर्भर रहने वाले जानवरो व मनुष्यो के स्वास्थ्य पर भी कुप्रभाव पड रहा है। हमारे कल--कारखाने नदियो और झीलो मे प्रचुर मात्रा मे कचरा डाल रहे हैं। इनमे मिश्रित घुलनशील नाइट्रोजन और फास्फेट के अश पानी मे इस तरह के सूक्ष्म जीव पैदा कर रहे है जो अन्य प्राणियो के जीवन के लिए घातक हैं।

सघन उद्योगो वाले देशो मे वर्षा के पानी की अम्लीयता खतरनाक स्थिति तक पहुच गई है। तेजाबी वर्षा की विशेष बात यह है कि एक राष्ट्र की चिमनी धुआ उगलती है और दूसरे राष्ट्र के लोग उसके फलस्वरूप अम्लीय वर्षा को झेलते हैं। नार्वे, स्वीडन, डेनमार्क आदि यूरोपियन राष्ट्र ब्रिटेन और फ्रास पर यह आरोप लगा रहे है कि उनके कल--कारखानो से निकलने वाले धुए से पर्यावरण प्रदूषित होता है तथा उनके राष्ट्रो मे अम्लीय वर्षा होती है।

ज्वलनशील ईंधन का व्यापक प्रयोग भी सभी प्राणियों के लिए हानिकर है। एक तरफ तो यह ऑक्सीजन की मात्रा को कम करता है, दूसरी तरफ कार्बनडाईऑक्साइड की मात्रा को बढ़ाता है। पर्यावरण पर विश्व–व्यापी संकटो में सबसे महत्वपूर्ण सकट कार्बन–डाइऑक्साइड व अन्य गैसों की वृद्धि है। वातावरण मे कार्बन डाईऑक्साइड के बढ़ने से पृथ्वी का तापमान भी बढ़ेगा, जिससे ध्रुवों की बर्फ पिघलकर महासागरों के जल स्तर को बढाएगी। बढा हुआ जल–स्तर सागरो के किनारे बसे शहरों को लील जाएगा। नासा की रिपोर्ट के अनुसार सन् 1979 से 1988 के दशक में ग्रीन हाउस तापवृद्धि नहीं हुई है। इस रिपोर्ट के सह लेखक शोध वैज्ञानिक क्रिस्टी का कहना है–"दीर्घकालीन तापवृद्धि का इस रिपोर्ट से कोई सम्बन्ध नहीं है। पिछले दशक मे तापवृद्धि नहीं हुई, इसका यह अर्थ नहीं है कि तापवृद्धि होगी ही नहीं।"

वातावरण मे क्लोरोफ्लूरो कार्बन्स (C F C) मे स्थित क्लोरीन को छोडे जाने से ओजोन की समस्या भी सिर उठाये खडी है। सी एफ सी मे क्लोरीन, फ्लोरीन और कार्बन तत्व होते हैं। वायुमण्डल में छोड़े जाने पर यह वायुमण्डल की ऊपरी सतह तक पहुच जाती है। सूर्य की पराबैंगनी किरणे सी एफ सी को तोड देती हैं और अलग क्लोरीन ओजोन के लिए खतरा बन जाती है।

वर्तमान में प्रदूषण का महान स्रोत परमाणु अस्त्रो के विस्फोट एव परीक्षणो से उत्पन्न रेडियोधर्मिता है इस रेडियोधर्मिता से पृथ्वी धरातल का प्रत्येक भाग और इसके सभी निवासी प्रभावित होते हैं। थ्रीमाइल आइलैण्ड और चेर्नोबिल दुर्घटनाओ ने रेडियोधर्मिता के खतरे को और अधिक सुर्खियो मे ला दिया है। ऊर्जा के वैकल्पिक साधन के रूप मे परमाणु शक्ति के प्रयोग पर भी इन दुर्घटनाओ ने प्रश्नचिन्ह लगा दिया है।

ये समस्त खतरे हमे पर्यावरण ही रक्षा के लिए सचेत करते हैं। हाल ही के वर्षों मे पर्यावरण की रक्षा एव पारिस्थितिक सरक्षण के प्रति लोगों की चेतना जागृत हुई है। दुनिया भर मे होने वाले प्रदर्शन, विरोध रैलिया इसके गवाह है। समय रहते यदि हमने स्वय को सयमित रखना सीख लिया तो निश्चित ही पृथ्वी की रक्षा हो पाएगी अन्यथा विनाशलीला से मानव स्वय को नहीं बचा पाएगा।

विकास के नाम पर जन्म ले रही संस्कृति

किसी भी राष्ट्र की समस्या समान नहीं होती। समस्या की समानता का प्रश्न तब और भी अप्रासगिक हो जाता है, जब दुनिया के कुछ राष्ट्र समृद्ध हो और कुछ राष्ट्र गरीब। समृद्ध राष्ट्रों की समस्याए अलग होगी और गरीब या अविकसित राष्ट्रों की समस्याए अलग। यूरोपीय राष्ट्रो मे शाति की जैसी समस्या है, वैसी समस्या पिछड़े या अविकसित राष्ट्रो को नहीं है। यूरोपीय राष्ट्र सैनिक शक्ति से सुदृढ हैं तथा भौतिक शक्ति से समृद्ध हैं। वहा दरिद्रता या सैन्य शक्ति का अभाव अशाति का कारण नहीं है। अशाति का कारण है—युद्ध का खतरा, कुविकास। पिछड़े, राष्ट्रो के लिए युद्ध की आशका कम है। गरीबी, पिछड़ापन, कुपोषण, वहा की मूलभूत समस्याए हैं और ये समस्याए ही उन राष्ट्रों को अशात बनाती हैं। गरीबी अशिक्षा का कारण है, अशिक्षा बेरोजगारी का, बेरोजगारी कुपोषण का, कुपोषण बीमारी का—ये सब मिलकर सामाजिक, राजनैतिक व आर्थिक पिछड़ेपन को जन्म देते हैं। यह चहुमुखी पिछड़ापन तनाव को जन्म देता है जो हिंसा या युद्ध का जनक बन जाता है। इसलिए पिछड़े राष्ट्रो के लिए गरीबी अशाति का मूल है। गरीबी व पिछडेपन के निदान से ही सम्पूर्ण व सतुलित विकास हो सकता है और यह तभी सभव होगा जब एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के प्रति प्रतिस्पर्धा छोडकर प्रेम, सहयोग, सौहार्द व विश्वास का व्यवहार करे।

जैन दर्शन व गाधी जी के अपरिग्रह के सिद्धान्तानुसार अतिभाव व अभाव दोनों ही अशाति के मूल हैं। समृद्ध राष्ट्र अतिभाव से पीडित है तो गरीब राष्ट्र अभाव के कारण। पिछड़े व गरीब राष्ट्रो का विकास हुआ ही नहीं है। समृद्ध राष्ट्रो का विकास तो हुआ है पर यह विकास विश्व व स्वय उन राष्ट्रों के लिए अभिशाप बन गया है, क्योंकि यह विकास असतुलित विकास जिसे हम कुविकास कह सकते हैं।

1960-70 के दशक को सयुक्त राष्ट्र द्वारा विकास का दशक घोषित किया गया था। इस दशक में विकास के अनेक कार्य भी हुए फिर भी विश्व

के काफी राष्ट्रों का विकास अब भी नहीं है। जो विकास हुआ है, उससे विकास के नाम पर तीन चीजें प्राप्त हुई हैं–

1. तथाकथित विकास ने विश्व के अन्य राष्ट्रों की तुलना मे कुछ राष्ट्रों को और अधिक समृद्ध व शक्तिशाली बनाया है।

2 इस विकास ने राष्ट्रो के बीच कुछ क्षेत्रीयता की भावना और आर्थिक समूहों का निर्माण किया है।

3. इस विकास ने बडी मात्रा में गरीबी बढ़ाई है और हिंसा को बढ़ावा दिया है जो नये राष्ट्रों के पर्यावरण को बिगाड़कर उन्हे युद्ध की ओर धकेलते हैं।

अत विकास कुछ राष्ट्रो के लिए क्रियाशील है और कुछ राष्ट्रों के लिए निष्क्रिय। ऐसा इसलिए है कि कुछ राष्ट्रो ने तो अभी विकास–यात्रा प्रारम्भ ही नहीं की है। उदाहरणत· अमेरिका की जनसख्या विश्व जनसख्या का 6% है पर यह विश्व के 70% ससाधनो का उपयोग करता है। दूसरी तरफ तीसरी दुनिया के देश जिनकी जनसख्या विश्व की जनसख्या का 70% है विश्व के मात्र 10% ससाधनो का प्रयोग करती है। इस असतुलित स्थिति मे क्या अविकसित्त राष्ट्र विकसित राष्ट्रो के साथ कदम से कदम मिलाकर चल सकते हैं। एक जिनके विकास की दर 0% है तथा दूसरे जिनके विकास की दर बहुत ऊची है क्या वे समान रूप से रह सकते हैं? इन प्रश्नो के उत्तर मे प्राय कहा जाता है कि जो राष्ट्र अत्यधिक विकसित हैं, एक दिन वे स्वय ही अपनी समृद्धि के नीचे दबकर खत्म हो जायेंगे। क्योकि ससाधनो का तेजी से हो रहा दोहन ससाधनो को समाप्त कर देगा। पर्यावरण असतुलित हो जायेगा। विकसित राष्ट्रो की बढती आबादी व बहुमंजिली इमारते—ये दोनों ही जीवन की मूलभूत प्रकृति को नष्ट कर देगी। यह विकास करोड़ो वर्षों से चली आ रही उन सामाजिक सस्थाओ को समाप्त कर देगा जो मानव जाति के रख-रखाव व निर्माण के लिए जिम्मेदार है। बिखरते परिवार, ढहते नीड़ मुक्त कामाचार, बच्चो व स्त्रियो के प्रति लापरवाही, अकेलापन, नशे की संस्कृति आदि इसके जीवन्त उदाहरण हैं। ये सब एक ऐसी नवीन सस्कृति का निर्माण कर रहे हैं। जो मानवता के लिए अभिशाप होगी।

दूसरी तरफ ये तथाकथित विकसित व सभ्य राष्ट्र पिछड़े व अविकसित राष्ट्रों की अर्थ व्यवस्था के बिगाड़ने के लिए भी जिम्मेदार हैं। ये पिछड़े राष्ट्रों

को शस्त्र खरीदने के लिए बाध्य करते हैं। यही कारण है कि पिछड़े राष्ट्र रोटी-कपड़ा-मकान नहीं जुटा पाते पर उनके लिए अस्त्र-शस्त्र आवश्यक होते हैं। ऐसे राष्ट्र राष्ट्रीय आय का मात्र 2 या 3% शिक्षा पर खर्च कर पाते हैं जबकि उन्हें सैनिक कार्यों पर 20-25% तक खर्च करना पड़ जाता है। उनके विकास के प्रयत्न अवरुद्ध होते चले जाते हैं। गरीबी उन्मूलन के लिए विकसित राष्ट्रों के ये प्रयत्न हिंसा के प्रतिकारक के रूप में कार्य करते हैं पर उनका दावा यह होता है कि वे पिछड़े राष्ट्रो की मानव शक्ति, रुपये की शक्ति व ससाधनों की शक्ति के द्वारा उनकी सस्कृतियो से जुड़ने के प्रयत्न कर रहे हैं ताकि वे कम से कम समय मे अधिक से अधिक विकास को प्राप्त कर सके।

अत समृद्ध राष्ट्रो के लिए ऐश्वर्य उनकी कब्रगाह बन रहा है जबकि पिछड़े राष्ट्रो के लिए गरीबी उनकी कब्रगाह बन रहा है। समृद्ध राष्ट्रो का विकास उनके लिए अभिशाप हो रहा है जबकि पिछड़े राष्ट्रो का विकास न कर पाना उनके लिए अभिशाप हो रहा है। एक तरफ अतिभाव है एक तरफ अभाव है। यही कुविकास है, यही असतुलित विकास है। ऐसा विकास न तो मानव जाति के लिए व्यवहार्य है और न वाछनीय। इस सदर्भ मे नार्वे के प्रधानमत्री तथा इदिरा गाधी शान्ति एव नि शस्त्रीकरण" पुरस्कार से सम्मानित श्रीमती ग्रो हालेस गुइटलैंड का कथन दृष्टव्य है—आज विश्व के समक्ष प्रश्न है असमानता और गरीबी का। विश्व जो पर्यावरण के सकट का सामना कर रहा है उसमे असमानता व गरीबी सबसे बडा प्रदूषण है। खपत अपने आप मे मुख्य मुद्दा नहीं है। प्रयुक्त स्रोत की उपलब्धता, वहनीयता, प्रदूषण, प्रतिमान और आर्थिक विकास के लिए पर्यावरण को नुकसान पहुचाने वाली वस्तुओ का प्रयोग और असमानता तथा पक्षपात पूर्ण वितरण ही मुख्य मुद्दे हैं। इस सक्रान्तिकाल मे हमारे लिए दो विकल्प हैं—या तो हम इस तथाकथित विकास को स्वीकार कर ले, जो हमे समृद्धि देगा और सस्कृतियो का नाश करेगा या हम सीमित विकास को स्वीकार करे जो हमे गरीबी मुक्त समाज का आधार देगा तथा मानवता को जीवित रखेगा। इन विकल्पो मे से किसी एक विकल्प के चयन का निर्णय किसी एक हाथ मे नहीं होगा पर हम सब इसके साक्षीदार होंगे तथा इसके परिणाम भी सभी को प्राप्त होंगे।

जैन दर्शन के परिप्रेक्ष्य में नि:शस्त्रीकरण और विश्वशांति

आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व युद्ध का वह स्वरूप नहीं था जो आज है। राजा अपने राज्य के विस्तार के लिए भाडे की सेना लेकर लडता था। राष्ट्रवाद का उदय अभी नहीं हुआ था। भारतवर्ष मे अनेक छोटे–छोटे राज्य थे जो प्राय दो कारणो से परस्पर लडते थे–भूमि और स्त्री। युद्ध के दुष्परिणामो से लोग सामान्यत परिचित थे, जैसा कि गीता मे अर्जुन के वक्तव्य से स्पष्ट होता है। अपने अधिकार के लिए लड़ना क्षत्रिय धर्म समझा जाता था। युद्धो मे शस्त्रधारी, शस्त्रधारी पर ही आक्रमण करता था। नि शस्त्र नागरिक युद्ध की विभीषिका के शिकार नहीं होते थे। पूजीवाद का उदय अभी नहीं हुआ था। उस समय व्यापारी और श्रेष्ठी थे जो निर्धन लोगो को दास-दासियो की भाति खरीदा-बेचा करते थे।

ऐसे समय मे महावीर और बुद्ध दो ऐसे महापुरुष हुए, जिन्होने व्यक्तिगत स्तर पर अहिंसा और अपरिग्रह की बात रखी। यह मात्र सयोग ही नहीं था कि ये दोनो ही क्षत्रिय राजकुमार थे जिनका पैतृक व्यवसाय युद्ध करना था। शेष 23 जैन तीर्थंकर भी राजघरानों से ही सबद्ध थे। उपनिषदो मे भी ब्रह्मविद्या का सबध क्षत्रियो से माना गया है। इसका अर्थ यह है कि अहिंसा और आत्मविद्या की चर्चा उन घरानो मे पनपी जिनका युद्ध करना पैतृक व्यवसाय समझा जाता था। स्वाभाविक भी है–युद्ध की विभीषिका से वे लोग अधिक परिचित थे जो स्वय युद्ध से सीधे जुडे थे।

नि:शस्त्रीकरण का अर्थ

अमेरिकन इन्स्टीट्यूट ऑफ डिफेन्स एनालिसेस ने नि:शस्त्रीकरण की परिभाषा देते हुए कहा है–"कोई भी एक योजना, जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से नि शस्त्रीकरण के किसी भी एक पहलू जैसे सख्या, प्रकार, शस्त्रो की प्रयोजन प्रणाली, उसका नियन्त्रण, उसकी सहायता के लिए पूरक यत्रो का निर्माण, प्रयोग व वितरण, गुप्त सूचनाए एकत्र करने के सयत्र, सेना का सख्यात्मक स्वरूप आदि को नियमित करन से सबध हो, नि.शस्त्रीकरण की

श्रेणी मे आते हैं।" जैन दृष्टि इससे भिन्न है।

भगवान महावीर के शस्त्रीकरण और नि शस्त्रीकरण सबधी विचार प्रथम जैन आगम 'आयारो' में संग्रहीत हैं। वहा शस्त्र के दो प्रकार बतलाये गये हैं—द्रव्य शस्त्र और भाव शस्त्र। पाषाण युग से अणुयुग तक जितने भी अस्त्र–शस्त्रों का निर्माण हुआ है, वे सब द्रव्य शस्त्र हैं। दूसरे शब्दों में निष्क्रिय शस्त्र हैं, उनमें स्वत प्रेरित संहारक शक्ति नहीं है। सक्रिय शस्त्र जिसे आयारो में भाव शस्त्र कहा गया है—असयम है। विध्वस का मूल असयम ही है। निष्क्रिय शस्त्रों में प्राण फूकने वाला तथा शस्त्रों के निर्माण की मूलभूत प्रेरणा असयम ही है।

संयुक्त राष्ट्र द्वारा की गई यह घोषणा—"युद्ध पहले मनुष्य के मस्तिष्क में लडा जाता है, फिर समरागण मे" इसी भावशस्त्र के स्वर का पुनरुच्चारण है। इस भावशस्त्र (असयम) को भली भाति समझकर छोडने का प्रयत्न करना नि शस्त्रीकरण है।

शस्त्रीकरण के हेतु

आयारो मे शस्त्रीकरण के चार हेतु बतलाये गये हैं—

1 वर्तमान जीवन के लिए

2 प्रशसा, सम्मान और पूजा के लिए

3 जन्म, मरण और मोचन के लिए

4. दु ख प्रतिकार के लिए।

जीवन की सुरक्षा के लिए मनुष्य—'जीवो जीवस्य जीवनम्'— यह मान कर अपने जीवन के लिए दूसरे जीवो का वध और शोषण करता है। प्रशसा या कीर्ति के लिए प्रतियोगितात्मक प्रवृत्तिया करता है। पूजा पाने के लिए मनुष्य युद्ध आदि विविध प्रवृत्तिया करता है। भावी जन्म के लिए अनेक हिंसात्मक प्रवृत्तिया, मारण के लिए बैर-प्रतिशोध तथा अन्य प्रवृत्तिया एव दु ख प्रतिकार के लिए दवा व रसायनों हेतु अनेक पशु–पक्षियो की हिंसा करता है। इन सभी कारणों के लिए वह शस्त्रीकरण करता है।

शस्त्रीकरण के मूल मे इन कारणो को देखकर यह कहा जा सकता है शस्त्रीकरण सुख का हेतु नहीं दु ख का मूल है। इसी सदर्भ मे वितेषणा और लोकेषणा को छोडने पर भी बल दिया गया है। इच्छा (असयम) दु ख का मूल है।

प्रत्येक व्यक्ति अपनी सुख–सुविधा को सर्वोपरि मानता है। जो कुछ उसके पास नहीं है, उसकी प्राप्ति के लिए वह दूसरे देशो मे पैर पसारता है। दूसरों के अधिकारों पर चोट करता है, उन पर विजय चाहता है तथा बार–बार

शस्त्र का प्रयोग करता है। सुकरात ने भी यही कहा था-"लोग सरल जीवन-पद्धति से सन्तुष्ट नहीं होंगे। वे सोफा, मेज तथा अन्य उपस्कर इकट्ठा करते रहेंगे। हमे आवास, वस्त्र तथा जूते जैसी आवश्यकताओं से आगे बढ़ जाना चाहिए उसके बाद हमे अपनी सीमाओं को बढ़ाना चाहिए, क्योंकि मूल स्थिति अधिक समय तक नहीं रहती और जो प्रदेश अपने मूल निवासियो का भरण-पोषण करने में काफी था वह अब उसके लिए छोटा हो जाएगा, तब हम अपने पड़ौसियो की जमीन का टुकडा हथियाना चाहेंगे। यदि हमारी तरह उनकी भी आवश्यकताए सीमा को पार कर जाएं तो वे स्वय धन के असीमित सचय के लिए लग जाए तो परिणाम होगा- युद्ध।" अत इच्छाओं का विस्तार शस्त्रीकरण का मूल है जो अज्ञान के कारण है। अज्ञानी को हिंसा व शस्त्रीकरण की विभीषिका समझना कठिन है। ज्ञान ही सयम का आधार है।

शान्ति की अविभाज्यता

भगवान महावीर ने युद्ध के मूल पर प्रहार किया। वे आज के मानवतावादी, शातिवादी आन्दोलनो के सिद्धातो की अपेक्षा कहीं अधिक गहरे मे गये। आधुनिक सदर्भों में यदि कहें तो उनका ध्यान प्रकृति के असतुलन और पर्यावरण प्रदूषण तक गया। वे प्रकृति के किसी भी तत्त्व के साथ किसी भी प्रकार की छेड-छाड को हिंसा मानते थे। इसलिए उन्होने पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु को भी सजीव माना। वनस्पति को तो वे जीवन-युक्त मानते ही थे। उनका मानना था जो पृथ्वीकायिक जीवो की हिंसा करता है वह अन्य जीवो की हिसा का भागी भी बनता है। यह अवधारणा आज के वैज्ञानिक अवधारणा के बहुत निकट है। प्रकृति का सतुलन बिगड जाने पर वनस्पति, पशु-पक्षी और मनुष्य का जीवन भी संकट मे पड जाता है। प्रो० गाल्टुग के अनुसार शाति समग्र है, अविभाज्य है। उन्होने अस्तित्व के पाच प्रकार बतलाए हैं-प्रकृति, मानव, समाज, विश्व और सस्कृति। उनके अनुसार इन पाचो अस्तित्वो का साध्य भिन्न-भिन्न होते हुए भी परम साध्य के रूप मे ये शाति की अपेक्षा रखते हैं-

प्रकृति का साध्य है-परिस्थिति का सतुलन
मानव का साध्य है-बोधि प्राप्त करना
समाज का साध्य है-विकास
विश्व का साध्य है-शान्ति
सस्कृति का साध्य है-पर्याप्तता।

गहराई से विचार करने पर ये सभी तत्त्व परस्पर अन्तर्ग्रथित दिखाई देते

है। इनमें से किसी एक भी तत्त्व की अवहेलना करके शांति स्थापित नहीं की जा सकती। प्रत्येक तत्त्व का अस्तित्व दूसरे तत्त्व के अस्तित्व पर निर्भर है और प्रत्येक तत्त्व की शाति दूसरे तत्त्व की शाति को प्रभावित करती है। प्रो गाल्टुंग ने ठीक ही लिखा है—"जब हम शांति के बारे में चर्चा या विचार–विमर्श करते हैं तो इसका आशय इतना ही नहीं है कि शांति केवल राष्ट्रों के बीच में ही हो, बल्कि शान्ति तो समाज की रग–रग में, मानव जाति मे और यहां तक कि प्रकृति में भी शाति व्याप्त होनी चाहिए।"

हितैक्य का दर्शन

भगवान महावीर ने कहा—यह हमारा अज्ञान है कि मनुष्य अपने और दूसरे के हितों मे टकराव देखता है। सबके हित में ही स्वय के हित को देखना सही दृष्टिकोण है। भगवान महावीर के समय तक वनस्पतिकाय की हिंसा न करना भूत–दया का अग था। आज विज्ञान के माध्यम से हम जानते हैं कि वनस्पति को नष्ट न करके हम वनस्पति पर नहीं, स्वय अपने पर ही कृपा करते हैं। गहरे आध्यात्मिक अर्थों मे किसी का भी अहित करके हम अपना ही अहित करते हैं। विश्व शान्ति के प्रसग मे कोई राष्ट्र दूसरे को पराजयी बनाकर अपना ही अहित करता है। अतीत इसका साक्षी है और इस बात की प्रेरणा देता है कि भविष्य मे युद्ध या शस्त्र प्रयोग न करने का सकल्प लिया जाए। हिरोशिमा व नागासाकी की विभीषिका व ईराक–ईरान युद्धों के अनुभवो के बावजूद आज भी प्रमत्त मानव दूसरों के अधिकारो के हनन करने मे लगे हैं, ऐसे ही व्यक्ति शस्त्र प्रयोग करते हैं।

नि: शस्त्रीकरण के आधार

विजातियों के प्रति प्रेम—आयारो के 'शस्त्र–परीज्ञा' अध्ययन मे एक महत्वपूर्ण बात यह है कि स्थावरों के लिए अहिंसा का प्रतिपादन त्रस–जीवो से पहले किया गया है। स्थावरो मे भी वनस्पतिकाय से पहले पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु–काय के प्रति अहिंसा का प्रतिपादन है। इस क्रम मे भी एक गहरा रहस्य है—त्रस–जीव के लक्षण हमारे अधिक निकट हैं, इसलिए उनके प्रति अहिंसा का भाव सहज उत्पन्न होता है। स्थावर हमारे विजातीय हैं, इसलिए उनके प्रति अहिंसा की भावना उत्पन्न होने की सभावना कम है। अहिंसा का मूल है—हम विजातीय के प्रति भी अहिंसक हो। यही नि शस्त्रीकरण का एक प्रमुख आधार भी है। आज जहा अहिंसा की चर्चा होती है, वहा सजातीयों के प्रति विशेष पक्षपात रहता है। यही कारण है कि अनेक सैनिक और गैर–सैनिक सघो एव गुटो का निर्माण हुआ है। ये सभी सगठन सजातीयो के प्रति अनुराग व विजातीयो के प्रति द्वेष के परिणाम थे।

सर्व-जीव समानता—भगवान महावीर ने निःशस्त्रीकरण का आधार प्रस्तुत करते हुए कहा सब जीव समान हैं। जीवों के शरीर भले ही छोटे-बड़े हों, आत्मा सबमें समान है। ज्ञान-शक्ति सब जीवों में समान है, भले ही ज्ञान का विकास सब जीवों में समान न हो। आत्मवीर्य या सामर्थ्य वीर्य की दृष्टि से कोई न्यूनाधिक नहीं होता। अत सजीतीय-विजातीय, रंग-भेद, जीवन-स्तर, विचार धारा आदि के आधार पर भेद-भाव न रखकर प्राणी-मात्र के प्रति मैत्री-भाव नि शस्त्रीकरण या विश्व-शान्ति का आधार बन सकता है। प्राणि मात्र को जीवन प्रिय है। सूक्ष्म जीव भी अपने प्राण लूटने की स्वीकृति कब देते हैं? जो व्यक्ति बलात् उनके प्राण लूटते हैं, वे उनकी चोरी करते हैं।

निःशस्त्रीकरण का अधिकारी

आयारो में आत्मवादी को नि शस्त्रीकरण का अधिकारी माना गया है। अनात्मवादी नि शस्त्रीकरण नहीं कर सकता। भगवान महावीर ने जिस अहिंसात्मक आचार का निरुपण किया उसका आधार आत्मा है। आत्मा का स्पष्ट बोध होने पर ही अहिंसात्मक आचार में आस्था हो सकती है।

नि.शस्त्र कौन हो सकते हैं?

जो अपना दु ख जानता है, वही दूसरो का दु ख जान सकता है। जो दूसरो का दु ख जानता है, वही अपना दु ख जान सकता है। आत्मतुला की यथार्थ अनुभूति हुए बिना नि शस्त्रीकरण का अधिकार नहीं मिल सकता। आत्मवाद की ऐसी व्याख्या भगवान महावीर को आधुनिक मानवतावाद के निकट ला देती है। भगवान महावीर ने नि शस्त्रीकरण का एक महत्वपूर्ण सूत्र दिया—जो दूसरे के अस्तित्व को नकारता है वह स्वय अपने ही अस्तित्व को नकारता है। शस्त्रीकरण के मार्ग पर चलने वाला दूसरे की अवहेलना कर आत्म-तत्त्व की ही अवहेलना करता है। अत नि शस्त्र वे ही हो सकते हैं जिन्हे सभी प्राणी आत्मवत् लगे। महावीर ने कहा—"पुरुष! जिसे तू हनन करने योग्य मानता है, वह तू ही है। जिसे तू आज्ञा मे रखने योग्य मानता है, वह तू ही है। जिसे तू परिताप देने योग्य मानता है, वह तू ही है। जिसे तू दास बनाने योग्य मानता है, वह तू ही है। जिसे तू मारने योग्य मानता है, वह तू ही है।" जो व्यक्ति क्रिया की प्रतिक्रिया देख लेता है, वह किसी को भी मारना या अधीन करना नहीं चाहता।

शस्त्रीकरण से वे ही बच सकते हैं जो अतीत के अनुभवों के आधार पर शस्त्र प्रयोग मे अपना अहित देख लेते हैं। जो दूसरों के भय, आशका, लज्जा, दबाव या प्रलोभन से शस्त्रीकरण नहीं करते वे समय आने पर

शस्त्रीकरण से बच नहीं सकते। समता का आचरण व सबकी स्वतंत्र सत्ता स्वीकार करने वाले ही निःशस्त्रीकरण के उपासक हो सकते हैं। किसी भी प्राणी, भूत, जीव और सत्त्व का हनन करने वाले, उन पर शासन करने वाले, उन्हें दास बनाने वाले, उन्हें परिताप देने वाले, उनका प्राण वियोजन करने वाले अहिंसक और निःशस्त्र नहीं हो सकते।

निःशस्त्र ही अभय हो सकते हैं

भगवान महावीर निःशस्त्रीकरण का सबध वीरता से जोड़ते हैं। "पणया वीरा महावीहिं"—यह उक्ति हमे महात्मा गाधी का स्मरण कराती है जो मानते थे—कायर कभी अहिंसा का पालन नहीं कर सकता। निःशस्त्रीकरण सभी को अभय प्रदान कर सकता है जबकि शस्त्रीकरण का मूल भय है।

शस्त्र के द्वारा झुकाना प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देना है। जिस विजय के लिए शस्त्र बनाने व चलाने पड़े, वह प्रतिस्पर्धा का स्थान है। जो सशस्त्र है वह सभय है, पराजित है। जो अशस्त्र है—वह अभय है, विजयी है। शस्त्र प्रतिस्पर्धा लाता है। एक शस्त्र को व्यर्थ करने के लिए दूसरा, दूसरे को व्यर्थ करने के लिए तीसरा, यह क्रम आगे से आगे बढ़ता है। अशस्त्र मे स्पर्धा नहीं होती।

सभ्य जीवन की यह विडम्बना है—हम युद्ध तो नहीं चाहते किन्तु भोग-विलास की निन्दा करने से हिचकिचाते हैं, शस्त्र त्याग नहीं चाहते। शाति के प्रयत्न करने वाले सभी सगठनों के लिए भगवान महावीर का यह सदेश है—यदि शाति चाहते हैं तो सुख की आशा छोडे। यह सत्य है—सुख की आसक्ति हम पूर्णत नहीं छोड़ सकते किन्तु यह भी सत्य है—सभी अपनी इच्छाओ पर नियमन तो कर ही सकते हैं। हम सभी प्रकार की हिंसा नहीं छोड़ सकते पर निरर्थक हिंसा तो छोड ही सकते हैं।

संयुक्त राष्ट्र की विश्वशांति में भूमिका

सयुक्त राष्ट्रसंघ जिसका जन्म अराजकता और युद्ध की विभीषिका के बीच हुआ और जिसका लालन–पोषण उपद्रवों व परमाणु विस्फोट के युग मे हुआ, अपने 50 वर्ष पूरे करने को आया है। इतने दीर्घ काल तक अस्तित्व मे बना रहना इसकी अन्तर्निहित शक्ति व शाति के लिए विश्वव्यापी अभिलाषा का द्योतक है। इसने न केवल सुरक्षा एवं विश्वशाति सम्बन्धी कार्य किये हैं बल्कि अनगिनत अभागों के लिए कल्याण के कार्य भी किये हैं।

यद्यपि यह सही है कि इसे राजनीतिक विवादो के सामधान में कोई उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली है पर यह कम महत्वपूर्ण नहीं है कि ऐसे विवादो के समाधान मे यदि सयुक्त राष्ट्र का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हिस्सा न लिया होता तो ये विवाद इतने गम्भीर हो सकते थे कि विश्वशांति को खतरा हो सकता था।

संयुक्त राष्ट्र की विश्वशाति के लिए व्यवस्था

चार्टर की वर्तमान व्यवस्था के अनुसार संयुक्त राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय शाति एव सुरक्षा कायम रखने के लिए मुख्यत दो विधियॉ अथवा प्रक्रियाए काम मे लाता है–

1 शातिपूर्ण समाधान की प्रक्रियाए

2 प्रतिरोधात्मक अथवा बाध्यकारी प्रक्रियाए।

शातिपूर्ण समाधान की प्रक्रिया मे सयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अनुच्छेद 33 मे यह व्यवस्था है कि यदि किसी विवाद से विश्वशाति व सुरक्षा को खतरा पैदा हो जाए और सम्बन्धित पक्ष झगड़ा निपटाने मे असफल रहे तो सुरक्षा परिषद विवादी से वार्ता, जाच मध्यस्थता, पंचनिर्णय, ससाधन, समझौते आदि द्वारा विवाद निपटाने का प्रयत्न करती है।

प्रतिरोधात्मक एवं बाध्यकारी प्रक्रिया में विश्वशाति भग होने की स्थिति मे सयुक्त राष्ट्र बल प्रयोग अथवा प्रतिरोधात्मक उपायों का आश्रय भी लेती है।

संयुक्त राष्ट्र की विश्वशांति सम्बन्धी भूमिका

संयुक्त राष्ट्र सघ का मुख्य उद्देश्य राजनीतिक समस्याओं का समाधान करते हुए अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा को प्रोत्साहन देना है। अन्तर्राष्ट्रीय शाति और सुरक्षा के लिए उसके महत्वपूर्ण प्रयास रूस–ईरान विवाद 1946-47, यूनान विवाद 1946-47, बर्लिन समस्या, कोरिया संकट, फिलिस्तीन विभाजन की समस्या, कश्मीर समस्या, स्वेज नहर विवाद, कागो समस्या, अरब इजरायल सघर्ष 1956 व 1973, भारत–पाक सघर्ष 1965 व 1971, ईराक–ईरान युद्ध के समय देखने मे आये। इन विवादो मे कोरिया सकट, स्वेज नहर विवाद आदि ऐसे विवाद थे जिनमें सयुक्त राष्ट्र सघ का हस्तक्षेप व प्रयास न होते तो सम्भवत ये विवाद विश्वयुद्ध का रूप ले लेते। कोरिया सकट में तो सयुक्त राष्ट्र संघ ने प्रथम बार सैनिक शक्ति का भी प्रयोग किया।

खाडी युद्ध में बहुराष्ट्रीय सेनाओं को ईराक द्वारा कुवैत मे की गई मनमानी को रोकने में भी सयुक्त राष्ट्र सघ सफल रहा तथा सयुक्त राष्ट्र सघ के तत्वावधान में ईराकी परमाणु ठिकानो का निरीक्षण भी सम्भव हुआ। यद्यपि इसके पीछे अमरीका न होता तो सम्भवत सयुक्त राष्ट्र सघ ऐसा करवाने मे असफल रहता।

यद्यपि कश्मीर का प्रश्न, वियतनाम का सघर्ष, निशस्त्रीकरण, परमाणु अस्त्रों पर प्रतिबन्ध आदि के स्थायी समाधान मे सयुक्त राष्ट्र सघ असफल रहा है लेकिन फिर भी कुछ विवादो को अधिक विस्फोटक बनने से रोकने की दिशा में सघ के प्रयास उल्लेखनीय रहे हैं तथा प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप में इसने शांति स्थापना के अनेक सफल प्रयत्न किये हैं।

निशस्त्रीकरण के क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्र के प्रयास

सयुक्त राष्ट्रसघ ने प्रारम्भ से ही निशस्त्रीकरण की समस्या पर ध्यान देना शुरू किया। निशस्त्रीकरण व परमाणु शक्ति पर नियन्त्रण की दृष्टि से 1946 मे सघ द्वारा अणु शक्ति आयोग (Atomic Energy Commission) की स्थापना की तथा परम्परागत शस्त्रों को सीमित करने की दृष्टि से परम्परागत शस्त्र आयोग (The Commission for Conventional Armaments) गठित किया। 1956 मे जेनेवा सम्मेलन (1955 से 1960) के प्रयासों के बाद सयुक्त राष्ट्रसंघीय निशस्त्रीकरण आयोग की बैठक में निशस्त्रीकरण के मुद्दे

को महत्त्वपूर्ण माना गया।

1961 में महासभा ने परमाणु परीक्षण को बंद रखने का आग्रह किया तथा 1963 में परमाणु परीक्षण प्रतिबंध सधि सम्पन्न हुई। निशस्त्रीकरण के क्षेत्र में एक आंशिक सफलता तब मिली, जब रूस व अमेरिका के बीच 1968 में परमाणु अस्त्र प्रसार निरोध सधि सम्पन्न हुई। सयुक्त राष्ट्र संघ ने 1970 से 1980 तक के दशक को निशस्त्रीकरण दशक घोषित किया एवं विभिन्न राष्ट्रो को परमाणु अस्त्रों की होड़ को छोड़ने के लिए कारगर कदम उठाने की बात कही तथा 1972 में परमाणु परिसीमन सधि (साल्ट–1) हुई। 1978 मे जेनेवा मे निशस्त्रीकरण सम्मेलन हुआ जिसमे परमाणु अस्त्रो के उत्पादन को समाप्त करने तथा शस्त्रीकरण पर हो रहे खर्च को कम करने की बात कही गई। 1979 मे साल्ट–2 पर हस्ताक्षर हुए। 1982 में सोवियत सघ ने परमाणु अस्त्रो के प्रसार पर रोक की एकतरफा घोषणा की तथा 1982 मे उसने सघ मे यह घोषणा की कि वह परमाणु शक्ति का प्रयोग करने वाला प्रथम राष्ट्र कदापि नहीं होगा। इसी वर्ष निशस्त्रीकरण पर दूसरा विशेष अधिवेशन भी सम्पन्न हुआ।

सयुक्त राष्ट्र सघ के ये प्रयास आज तक चल रहे हैं यद्यपि कोई उल्लेखनीय सफलता नहीं मिल पाई है। सोवियत सघ के विघटन के बाद अमरीका व रूस के बीच हुए 1993 मे निशस्त्रीकरण के कुछ समझौते आशा की किरण है।

सयुक्त राष्ट्रसंघ और मानवाधिकार

सयुक्त राष्ट्र सघ ने विश्वशांति की दृष्टि से मानवाधिकारो के सरक्षण पर पर्याप्त बल दिया है। रग–भेद के कारण हो रहे बर्बरतापूर्ण कृत्यो को रोकने मे उसके प्रयासो को भुलाया नहीं जा सकता। दक्षिण अफ्रीका की गोरी सरकार के विरुद्ध लगाये गये प्रतिबन्ध इसी के प्रयासों का फल था, जिसका सुपरिणाम अब सामने आ रहा है कि दक्षिण अफ्रीका मे लोकतान्त्रिक आधार पर रग भेद के बिना अप्रैल–मई, 94 में चुनाव सम्पन्न हुए हैं। 10 दिसम्बर मानवाधिकार दिवस इसी के सुप्रयासो का फल है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के सामाजिक-सांस्कृतिक क्षेत्रों में किये गये विश्वशांति के प्रयास

सयुक्त राष्ट्र सघ का यह विश्वास है—युद्ध पहले मानव मस्तिष्क में

पैदा होते हैं, अतएव युद्धों को तभी रोका जा सकता है जब सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक स्थितियों को बदला जाय। 1970 के दशक को विकास का दशक घोषित किया गया। इस काल में सदस्य राष्ट्रों से गरीबी, भुखमरी, अज्ञानता, कुपोषण व रोगों को जडमूल से उखाड़ फेंकने की बात कही गई।

सामाजिक समस्याओं के निदान ढूंढने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनो का आयोजन हुआ, जैसे 1966 में World Land Reform conforence, 1970 में Un Conference on the treatment of offenders तथा 1974 मे Third World Population Concerence आदि–आदि का आयोजन। 1975 को International Women's years घोषित किया गया। आर्थिक विकास की दृष्टि से ILO, World Bank, IMF आदि की स्थापना तथा सामाजिक एव सास्कृतिक क्षेत्र में UNESCO, CWF आदि की स्थापना विश्वशाति की दिशा मे सफल कदम है क्योकि अशाति सामाजिक, सास्कृतिक व आर्थिक असमानताओं व विभिन्नताओं के कारण भी होती है।

संयुक्त राष्ट्रसंघ ने उपनिवेशवाद व साम्राज्यवाद के उन्मूलन मे भी सफलता पाई है। साम्राज्यवाद के चगुल में फसे लिबिया, टूनिसिया, अल्जीरिया, टोबोलैण्ड आदि को स्वतत्र राष्ट्र का दर्जा मिल चुका है।

यद्यपि विश्वशाति के क्षेत्र में आशिक सफलता ही प्राप्त कर पाने के बावजूद आज विश्वशाति की दृष्टि से यू एन ओ का स्थान कोई दूसरी सस्था ले पाने मे सक्षम नहीं है। इसकी सफलता का एक आधार तो यही है कि इसकी स्थापना के बाद से आज तक कोई बडा युद्ध नहीं हो पाया है। यद्यपि यू एन ओ में कुछ बडे राष्ट्रों का प्रभुत्त्व है, यदि उसे कम कर सुरक्षा परिषद व महासभा को और अधिक सक्षम बना दिया जाए तो इससे विश्वशाति के क्षेत्र में उल्लेखनीय सफलता मिल सकती है।